TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180560

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S61S    Acc.No. H3004

सिंह हरदयाल

सामाजिक कारा के बन्दी

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S61S Accession No. H 3004

Author सिंह हरदयाल

Title सामाजिक कारा के बन्दी

This book should be returned on or before the date last marked below.

# सामाजिक कारा के बन्दी

( सामाजिक उपन्यास )

लेखक

हरदयाल सिंह एम० ए०

सन्मार्ग प्रकाशन

दिल्ली–६

सर्वोदय साहित्य मंदिर,

प्रकाशक
सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली—६

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५९

मूल्य चार रुपए

मुद्रक
शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा हरिहर प्रेस, दिल्ली

# सामाजिक कारा के अंदर

## (एक दृष्टि)

**नारी काम की पुतली है, नारी कर्तव्य की कला है,**
**नारी निर्माण की आधारशिला है—**

समाज में प्रायः तीन प्रकार के लोग होते हैं जो नारी के प्रति इस प्रकार की धारणा रखते हैं। पहली श्रेणी में वे लोग आते हैं जो चरित्र के डकैत होते हैं; दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो आदर्श के पुजारी होते हैं और तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो नीति और न्याय के प्रतिनिधि होते हैं।

'सामाजिक कारा के बन्दी' उपन्यास के लेखक तीसरी श्रेणी में ठहरते हैं। उनके प्रस्तुत उपन्यास की नायिका—इन्दु—सामाजिक चरित्र-निर्माण की एक अदृश्य आधारशिला है और अजय के रूप में लगता है जैसे उपन्यासकार का चिंतन-रूप ही मूर्तिमान हो उठा है।

+ + +

उपन्यास की कथा में सामाजिक संघर्ष है, व्यक्ति-परिवार का स्नेह है, प्रेम की स्वच्छंदता और सीमा का द्वन्द है। नारी के लिये प्रेम अभिशाप है या वरदान?—उत्तर में उपन्यास कहता है कि संकल्प से बंधा हुआ प्रेम अंततः वरदान है और सामयिक परिस्थितियों में बंधा हुआ प्रेम अभिशाप है। इस दृष्टि से मुझे प्रस्तुत उपन्यास की नायिका का हल्की सामाजिक दृष्टि से पतित दीखने वाला चरित्र भी उतना ही महान प्रतीत होता है जितना मु० प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास की वेश्या-नायिका का। मुझे उपन्यास के इस प्रकार के स्थलों पर वीभत्सता का भान न होकर जागरूकता की अंगड़ाई दीखती है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम की स्वच्छंदता और सीमा के चक्र में चकराती नारी भी अपनी संकल्प-शक्ति के सहारे अंत में जय पाकर जी सकी है, भले ही समाज की कारा के कलंक के टीके उसे बुरा सिद्ध करें, किन्तु वह आत्मा से बुरी नहीं। यों प्रस्तुत उपन्यास में नारी के चरित्र का वर्तमान जागरूक पक्ष उभारना उपन्यासकार का मूल ध्येय रहा है, जिसमें वह बहुत कुछ सफल भी रहा, यह कहा जायगा।

पुरुष नारी के प्रति जहाँ बर्बर है वहाँ आज वह उसे भेड़-बकरी बनाकर अपने नृशंस अहम के खूँटे पर बाँधे नहीं रख सकता, वह कैसे भी उसे तोड़ेगी, मुक्त होगी, विद्रोह जगाएगी, पतन की आग जलाएगी।

इन्दु और गोविन्द के बीच इस प्रकार की ज्वलंत समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयास है। तलाक (Divorce) का सबल, सविवेक-पक्ष और उसका प्रयोग-उपयोग यहाँ यथासम्भव सही सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। हाँ, उसमें जोश का पलड़ा भारी और होश का पलड़ा यत्र-तत्र हल्का हुआ नज़र आता है।

अंध-आस्तिकता धर्म-दृष्टि से भले ही महान हो पर कर्म-सृष्टि में वह प्रायः कमजोर ठहरती है। उपन्यासकार ने नास्तिकता का निरा नारा नहीं लगाया बल्कि अंध सामाजिक-धार्मिक आस्तिकता की कारा तोड़ने का बल दिखलाया है। इस दृष्टि से मैं उपन्यास को पूरा सफल और उपन्यासकार को शिल्प-सबल कहूँगा। उसके चरित्र-चित्रण में यथार्थता है, कथा में एक सूत्रता, समस्याओं में सजीवता और वर्णन में रोचकता है। भाषा विषयानुरूप चली है।

श्री हरदयाल जी अभी उपन्यास क्षेत्र के अंकुर होकर भी अपने पहले ही उपन्यास के पहले पृष्ठ से ही अंत के पृष्ट तक जैसे दिन दूने, रात चौगुने फैलने-फूलने और फलने का आभास दे रहे हैं। उनकी प्रगति निश्चित लगती है। मैं उनकी दृष्टि-सृष्टि और उपलब्धि की सराहना करूँगा और यह आशा भी कि वह सहृदय पाठकों को चरित्र निर्माण की दिशा देगी, प्रेम-परख देगी और वह घुट्टी भी जो वर्त्तमान नारी-पुरुष की ऊपर से चमकीली-भड़कीली और भीतर से पीली-पोली रोगिल चरित्रिकता को स्वस्थ्य कर सकेगी।

इतना और कहूँगा कि लिखना बड़ा कठिन कष्टसाध्य कार्य है लेखक आत्मा और मस्तिष्क को-निचोड़कर समाज को भाव, विचार, रस और मनोरंजन देता है। फिर वह मनुष्य है तो भूलों का शिकार भी। अतः उसकी कृति को जब हम सहृदयता से पढ़ेंगे तभी उसक रस, भाव विचार और मनोरंजन ग्रहण कर पाएँगे। आलोचना औ तर्क की धार से हम कृति के अंगों को चीर-फाड़ भले ही डालें, उसका अखंड आनन्द नहीं भोग सकते। मेरा निवेदन है कि आप सहृदय पाठक बनकर प्रस्तुत उपन्यास का रस लें; उसकी भूलों को हो सके तो स्वयं सुधार लें, यह न हो तो उन्हें भुलाते चलें। सहृदयता ही में साहित्य का रस है।

अंत में मैं श्री हरदयालसिंह जी को इस उपन्यास की सुन्दर देन के प्रति बधाई देता हूँ और साथ ही उनके भविष्य के सृजन के प्रति शुभ-कामना भी।

१६—डी० एफ०, तिमारपुर, दिल्ली—८ जीवन प्रकाश जोशी
तिथि २६-१०-१६५६

# पिकनिक

"शनिवार को कालिज की पिकनिक का आयोजन किया गया है। खर्च का अनुमान यह है कि हर शिक्षार्थी तीन-तीन रुपये डालेगा। प्रबन्धकर्ताओं का यह भी निर्देश है कि हर विद्यार्थी अपना-अपना गिलास या मग साथ लाये।" इतना कह कर प्रोफैसर साहब क्लास से उठकर चले गये और कालिज में छुट्टी हो गई।

कठिन से कठिन विषय भी यदि अगले दिन को तैयार करने के लिये कहा जाता तो इंदु को जरा भी चिन्ता न होती। अजय के बाद वही तो अपनी कक्षा में दूसरे स्थान पर थी। मगर जब-जब ऐसे अवसर आते उसके मुख पर चिन्ता के लक्षण दिखाई देते थे। वह तीन रुपये देने के अयोग्य है यह बात वह किसी भी तरह किसी पर प्रकट नहीं होने देना चाहती थी। आखिर वह एम० ए० में पढ़ती थी। वह घर को तरफ चली जा रही थी। कौन उसके आगे निकल गया, कौन उसके पीछे चल रहा था इसका उसे कुछ पता न था। वह सोच रही थी, "हाय, धन का अभाव किस तरह योग्य से योग्य व्यक्ति को सामाजिक सम्पर्कों में अयोग्य बना देता है। धनवान मूर्ख भी सहज ही में हर प्रकार की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। सचमुच गुर्बत एक लानत है। धन अपंग का अंग है। मगर कोई निर्धन क्यों होता है—किसी से मुझे क्या, मैं निर्धन क्यों हूँ? मेरे घर में दरिद्रता का वास क्यों है? इस लिये कि वहाँ कोई पुरुष नहीं है? क्या पुरुष की उपस्थिति ही दरिद्रता को भगा देती है। नहीं यह कैसे हो सकता है? उसका कदम ज़मीन पर एकाएक ज़ोर से पड़ा। "पुरुष में ऐसा क्या है। वे भी तो हमारी तरह मानव हैं उनकी भी हमारी तरह बुद्धि है। हमारी तरह हाथ पैर हैं।

नहीं शायद उनके हाथ पैर औरतों से मजबूत होते हैं । ठीक है धन अर्जित करने के लिये मजबूत हाथों की आवश्यकता है। इंदु के दायें हाथ की मुट्ठी तनिक कस गई। "मगर उसमें नारी का क्या दोष है। उसकी सुकुमारता प्राकृतिक है। तब प्रकृति ही कठोर है। वास्तव में उसी के कारण हमारी देह का ऐसा निर्माण हुआ है कि इसमें बल नहीं जितना पुरुष के देह में होता है। परन्तु प्रकृति के तो बहुत सारे और भी बन्धन होते हैं। प्रकृति ने सबको नंगा और खाली हाथ पैदा किया है। वह पुरुष हो अथवा नारी। तब हम नंगे थोड़े ही रहते हैं। हम प्रकृति के विरुद्ध चल कर ही मनुष्य का जीवन व्यतीत करते हैं। मैं नारी हूँ इससे क्या। यह प्रकृति का बन्धन है। मैं सामान्य नियम के अनुसार इसके विपरीत यत्न करूँगी। मैं दरिद्र जीवन व्यतीत नहीं करूँगी।" वह घर के समीप पहुँचती जा रही थी। उसकी दृष्टि अपने साधारण से मकान की टूटी हुई दीवार पर अटक गई। उसे अपनी वर्तमान स्थिति का रूप दिखाई दिया। उसकी विचारधारा में परिवर्तन हो गया। वह अपने आप से पूछने लगी—"कल की पिकनिक का खर्च कहाँ से लाऊँ।" वह आसमान की तरफ देखने लगी, मगर उसके सामने एक घना काला बादल था। उसे सारा आसमान धुंधला आसमान दिखाई दिया। "क्या कल छुट्टी ले लूँ ? नहीं, पहले मैं कई बार कर चुकी हूँ। यह तो अन्तिम पिकनिक है। कालिज के जीवन की यादगार रहेगी। मैं इसमें अवश्य जाऊँगी।" इतने में वह अपने घर पर पहुँच गई।

इंदु का घर जैसे बाहर से जीर्णशीर्ण था वैसे ही अन्दर से भी कुछ आकर्षक न था। एक तरफ बाण की खाट थी। उस पर एक पुरानी सी दरी और मैली सी रज़ाई तथा एक सरहाना पड़ा था। रज़ाई की रुई कहीं कहीं गैंद की तरह एकत्र हो रही थी और कहीं कहीं से बिल्कुल खोल ही खोल रह गया था। उसमें मुंह डालने पर बाहर का प्रकाश अच्छी तरह दिखाई देता था। यह इंदु का बिस्तर था। दूसरी तरफ

एक कोने में उसकी माँ का बिस्तर लपेटा हुआ था। उसमें अन्दर क्या कुछ था यह मालूम नहीं। परन्तु बाहर काले रंग का एक पुराना सा कम्बल था। उसके साथ ही सिलाई की मशीन पड़ी थी जिसके पास कई रंग के कपड़ों की लीरें बिखरी हुई थीं। अंदर जाते समय जो दीवार दायें हाथ को थी उसपर कुछ खूंटियां थीं जिन पर सिले हुए कपड़े टंगे थे। इंदु की चारपाई के साथ एक स्टूल था जिसके ऊपर नीचे किताबें और कापियाँ रहती थीं। यही उसका टेबल भी था। इस मकान में एक छोटी सी खिड़की थी। बीच की दीवार में एक दरवाज़ा था जिसके अन्दर रसोई थी। बीच के इस दरवाजे की देहली पर कोइले की एक प्रेस पड़ी रहती थी। मकान शहर में था इस लिये इसमें बिजली और पानी का प्रबन्ध मौजूद था।

इंदु सूती छींट की लम्बी कमीज और सफेद लट्ठे की सलवार पहनती थी। कमीज के ऊपर एक पीस की पूरे बाजू वाली कोटी डालती थी जो कि उसने स्वयं बुनी थी। इंदु का लिवास सस्ते कपड़े का होता था मगर इसमें विशेषता यह थी कि वस्त्रों की कटिंग और फिटिंग अच्छी होती थी। तिस पर उसके कपड़े प्रेस अवश्य किये जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने उसको ऐसी देहयष्टी प्रदान की थी कि उस पर कपड़ा जैसा भी हो फबता खूब था। जैसे हलके उसके वस्त्र थे वैसी ही हलकी हलकी कानों में दो बालियाँ भी थीं। ये बालियाँ दो वर्षों से ज्यों की त्यों लटक रही थीं, मगर उसकी चमक में कोई अन्तर नहीं देखा गया। इंदु के बाल अंग्रेजी ढंग से खुले रहते थे। अमावस्या की रात्रि के समान काली उसकी केशराशि लम्बी गर्दन पर से फूलती हुई पीठ और कन्धों से ऐसी मुड़ी रहती थी जैसे बहता हुआ पानी किसी पत्थर से टकरा कर पीछे लौटता हो। उसकी देह का रंग अभिनव नवनीत से भी श्वेत-सुकुमार और आँखें काली चमकीली तथा बड़ी-बड़ी थीं।

घर पहुँचने पर माँ ने अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री को खाना

खिलाया। इन्दु भोजन कर के खाट पर बैठी थी। माँ प्रैस करके कमीज़ की तह लगा रही थी। उसी तरह सिर नीचा किये वह इन्दु से बोली "बेटी, बाबू गोविन्द के कपड़े सिल कर तैयार पड़े है। उन्होंने कल ले जाने को कहा था लेकिन अब तक नहीं आए। रात के लिए घर पर दाल-भाजी कुछ नहीं है। वह आ जाते तो काम बन जाता।" अन्तिम वाक्य सुनकर इन्दु खुश हुई। उसका उत्साह बढ़ गया क्योंकि उसे पिकनिक का खर्च मिलने की भी आशा हो गई। इन्दु की माँ ने मशीन अपनी ओर खींच कर पास पड़े कटे किसी कपड़े का एक भाग उसके बीच को धकेलते हुए कहा "क्या मालूम, आने को तो कल भी कह गये थे, आते भी हैं या नहीं ?" यह सुनकर इन्दु का मुख फिर मलिन हो गया। अगले ही क्षण उसकी भृकुटी में बल पड़ गए। फिर वह कुछ सोचकर बोली "माँ उनका घर किधर है ?" माँ मशीन के पहिये को दायें हाथ से एक चक्कर देते हुए बोली "बेटी, घर तो दूर नहीं, पर जाए कौन ?" "यदि में चली जाऊँ तो कोई हर्ज है ?" इन्दु ने पूछा। माँ गड़ गड़, गड़ गड़ मशीन चलाती हुई बोली—"हर्ज", उसके मुख पर फीकी-सी मुस्कान थी "हर्ज क्या हो सकता है। परन्तु मेरी बच्ची, मैंने आज तक तुझे ऐसे काम पर नहीं भेजा। तब तू आज भी क्यों जाएगी। खुद आ जाएँ तो अच्छा है नहीं तो कल सही।"

इन्दु उत्सुक थी, उसे पिकनिक के लिए पैसे चाहिये थे। वह ज़रा उतावली में बात करती हुई बोली "माँ मैं ही ले आती हूँ। कहूँगी, सहेली के घर जा रही थी। माँ ने कहा आपको कपड़ों की जल्दी जरूरत होगी इसलिए यह भी लेती जाओ और मैं ले आई।" माँ ने अधिक आग्रह नहीं किया। मशीन की पीठ पर हाथ रखकर उसे गोविन्द के घर का पता समझाया और इन्दु कपड़े लेकर चली गई। वह थोड़ी देर में गोविन्द के घर पर पहुँच गई। वहाँ पर उसे गोविन्द की माँ मिली। महिला थी, इसलिए इन्दु को उससे बात करने में संकोच अनुभव नहीं हुआ। कपड़ों से लदे हाथों को जरा बढ़ाते हुए बोली "ये आपके कपड़े

कल से तैयार पड़े थे। माँ इन्तजार कर रही थी कि कोई लेने आएगा। मगर अब तक कोई नहीं आया। इसलिए मैं ही ले आई। इन्हें रख लीजिए और सिलाई के पैसे मुझे दे दीजिए।" गोविन्द की माँ मेज़ की तरफ इशारा करती हुई बोली "इन्हे यहाँ रख जाओ। आज महीने की २५ तारीख है, बाबुओं के पास पैसे कहाँ होते हैं। पहली तारीख को ले जाना।" इन्दु की आशाओं पर पानी फिर गया। उसने कपड़े मेज पर रख दिये थे। वह कुछ देर वहीं खड़ी सोचती रही कि गरीबों के पास तो पैसे नहीं होते मगर पैसे वालों के पास भी पैसे नहीं होते, यह कैसी विडम्बना है। इतने में गोविन्द की माँ ने एक और वागवाण छोड़ा "अब क्यों खड़ी है, कह तो दिया कि पहली तारीख को मिल जायेंगे।" धिक्कार है ऐसी बुजुर्गी को, वह आगे यह भी बोल गई "तुम धोबी, दर्जी बड़े ही लिच्चड़ होते हो। हमने तुम्हारे पैसे खा जाने हैं क्या ?'

इन शब्दों ने इन्दु के भावुक हृदय को रौंद डाला, परन्तु उसके आत्माभिमान को जागृत कर दिया। वह क्रोध से तमतमाती हुई बोली "हमने कोई धर्मखाता नहीं खोला हुआ है। काम किया है उसकी मजदूरी माँग रही हूँ, कोई दान-दक्षिणा नहीं। यदि पैसे नहीं हैं तो कपड़े भी पहली तारीख को मिलेंगे।" इन्दु अब एक क्षण के लिए भी यहाँ ठहरना नहीं चाहती थी। वह कपड़े उठाने लगी। इतने में गोविंद बाबू कमरे में दाखिल हुए। बुढ़िया ने देखते ही और ऊँचे स्वर में कहा, "अरे नीच लड़की—" गोविन्द ने माँ को एक तरफ धकेलते हुए कहा, तुम चुप रहो जी।" इस समय इन्दु के चेहरे पर क्रोध तथा लज्जा की रक्तिम आभा बिखर रही थी। गोविंद उसी की ओर निहार रहा था। इन्दु की दृष्टि भूमि पर थी। गोविंद बाबू पहले तो मन्त्रमुग्ध से उसे देखते रहे फिर कृत्रिम मृदुता से बोले, "तुम इनकी बातों का बुरा मत मानना। इनमें अभी भी वही पुराना असर है। यह कपड़े रहने दो। बेशक कभी-कभी यहाँ आया करो। इसे अपना ही घर समझो।" इन्दु जरा रूखे स्वर से बोली "मुझे बैठना नहीं, जाना है।"

इतना कहकर वह दरवाज़े की तरफ बढ़ गई। "ये पैसे तो लेती जाओ" गोविंद ने पीछे से पुकारा। इन्दु रुक गई, वह ज़रूरतमन्द थी। यदि समाज में ज़रूरत न होती तो कौन किसी की परवाह करता। विधवा जीवन-भर न रोया करतीं—कोई विधवा ही क्यों होती जो शादी की ज़रूरत न होती। मातहत अफसरों की झिड़कियाँ क्यों सहा करते—कोई मातहत ही क्यों होता जो नौकरी की जरूरत न होती। अमीर-गरीब के झगड़े क्यों होते—कोई गरीब ही क्यों होता जो धन की ज़रूरत न होती। लीडर दर-दर क्यों भटकते फिरते यदि वोट की जरूरत न होती और कोई लीडर ही कैसे बनता जो नेतृत्व की जरूरत न होती। यह जरूरत ही का तो झगड़ा है जिससे बड़े-बड़े योगी और तपस्वी भी अपने प्राण न छुड़ा सके। गीता में भी तो इसी ज़रूरत के दमन का बीड़ा उठाया गया है। उधर सारा अर्थशास्त्र ही जरूरत पर आधारित है। कोई कुछ भी कहे जब तक ज़िन्दगी है तब तक ज़रूरत भी मौजूद रहेगी। संसार की प्रगति का राज़ भी ज़रूरत पर ही आधारित है। तभी तो कहा गया है कि ज़रूरत ईजाद की माँ है।

यह जरूरत ही तो थी जो इन्दु को रुकना पड़ा। गोविन्द जेब से बटुआ निकाल कर उसमें से पैसे निकाल रहा था मगर उसकी दृष्टि इन्दु के मुख पर थी और इधर इन्दु की फर्श पर। गोविन्द खामखाह बटुए को इधर से उधर टटोलता रहा और फिर जरूरत से ज्यादा देर करने के बाद उसने पाँच रुपए निकाल कर इन्दु के हाथ पर रख दिये। बाकी के चार रुपयों के लिये पहली तारीख को आकर ले जाने के लिये कह गया। गोविन्द की नीयत बुरी थी। वह चाहता था कि यह लड़की उसके घर पर आया करे।।

इन्दु रुपये लेकर जल्दी-जल्दी घर की तरफ चली। वह सोच रही थी कि यह आदमी कैसा है। "व्यवहार से बड़ा विनम्र और भद्र मालूम होता है परन्तु यह मेरी तरफ घूर-घूरकर क्यों देख रहा था। क्या वह दुष्ट है ?" इन्दु यह न जानती थी कि प्राणियों में लिंगभेद का अत्यन्त

महत्वपूर्ण स्थान है। "यह मैं कैसे कह सकती हूँ कि वह दुष्ट है। उसने ऐसा कुछ किया तो नहीं। मगर वह पैसे निकालने में देर क्यों कर रहा था। क्या कंजूस है? कुछ भी हो वह आदमी अच्छा नहीं मालूम होता। और फिर उसकी माँ—वह तो पूरी चुड़ैल है। कहती है ये धोबी दर्जी बड़े लिच्चड़ होते हैं। जैसे मैं उससे भीख माँग रही थी। अब वे ज़माने चले गये जब छोटे लोग अकारण ही अमीरों से दबते थे।" इसी तरह सोचती हुई इन्दु घर पहुँच गई और उसने माँ से सारी बातें कह सुनाईं। माँ को सुनकर दुःख हुआ। उसे अपने पति की याद आ गई। उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह सूई से कपड़े को कच्चा कर रही थी। एक बूंद आँसू उस पर टपक पड़ी। इन्दु ने देख लिया—बोली "माँ तुम रो रही हो।" माँ ने आँखों को पोंछा और बोली, "बेटी अगर आज तेरे पिता जीवित होते तो तुझे काहे को इस तरह जाना पड़ता।" इन्दु ने साधारण रीति से कहा, 'माँ तब क्या हुआ। सब ठीक ही तो है। तुम वैसे ही दुखी न हुआ करो।" माँ चुपचाप सीने में लगी रही। तब इन्दु भी पढ़ने गई।

इन्दु के पिता क्लर्क थे। अपने वेतन से परिवार का गुजारा कर लिया करते थे। प्रायः शहरों में ही रहना होता था इसलिये स्कूल और कालिज की सुविधायें उन्हें प्राप्त थीं। उनकी केवल यही एक लड़की थी। जब इन्दु ने बी० ए० पास किया था तब उनकी तब्दीली इस नगर को ही की गई थी। लड़की की फीस की मुआफी मिल गई थी इसलिये उन्होंने उसे एम० ए० में दाखिल करवा दिया था। इसी प्रकार उन्हें अपने किसी परिचित से पुरानी पुस्तकें भी इन्दु के लिये मिल गई थीं। लेकिन यहाँ की तब्दीली उनके लिये घातक सिद्ध हुई। उन्हें नमूनिया हो गया और उसी से उनका देहान्त भी हो गया। मरते समय वह यह कह गये थे "इन्दु बेटा अब तुम एम० ए० अवश्य पास कर लेना।"

उनके अन्तिम आदेश का पालन माँ-बेटी के लिये एक समस्या तो अवश्य रही परन्तु वे उसके लिये जी-जान से प्रयत्न करने में लगी रहीं।

वृद्ध हों या बालक, पिकनिक पर जाने के लिये सब में एक नई स्फूर्ति का संचार हो जाता है। ऐसे अवसर कभी-कभी आया करते हैं। मई का महीना था। गर्मी काफी जोरों पर थी। सुबह के नौ बजे थे जब विद्यार्थी पिकनिक के लिये जा रहे थे। बाबुओं का दफ्तर जाने का समय था इसलिये इधर से उधर चलने वालों की संख्या बहुत थी। ये लोग बाहें झुलाते हुए अपने पड़ौस में रहने वाले साथियों के संग गप-शप मारते तेजी से दफ्तर की तरफ भागते से जान पड़ते थे। जितनी तेजी से ये लोग दफ्तर को जाते हैं उतनी ही ढीलढाल से शाम को वापसी पर चलते हैं। मगर इस समय तो किसी परिचित व्यक्ति की नमस्ते, सलाम वगैरा भी कोई हाथ उठाकर और कोई सिर्फ सिर हिला कर स्वीकार करता है।

पहाड़ी स्थलों पर गर्मी इतनी दुःसह नहीं होती जितनी मैदानों में होती है। इन दिनों मौसम बड़ा सुहाना होता है। कालिज के लड़के-लड़कियाँ बड़े प्रसन्न बातें करते, हँसते-खेलते टोलियाँ बनाकर पिक-निक स्थल की ओर जा रहे थे। दस-पंद्रह आदमियों की पार्टी हो तो लोग अपने टिफिन-कैरियर, थैले और स्टोव आदि स्वयं उठाकर ले जाते हैं। परन्तु यहाँ तो सैंकड़ों की संख्या थी। इसलिये हलवाइयों का ही प्रबन्ध था। हाँ मग, गिलास या प्याला हर एक के हाथ में दिखाई देता था। किसी किसी की आँखों पर गोगल लगे थे। किसी के कन्धे पर कैमरा लटक रहा था। किसी के हाथ में अखबार तो किसी के हाथ में उपन्यास दिखाई पड़ता था। कहीं-कहीं उपन्यास के हीरो अथवा हीरो-इन की प्रशंसा में पुल बँध रहे थे। कभी-कभी इस सिलसिले में लेखक की लेखन-शक्ति और प्रतिभा की आलोचना भी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ ने अपनी कविताओं के संग्रह की कापियाँ साथ उठा रखी थीं। और अपने मित्रों को बढ़िया से बढ़िया पद सुना रहे थे। वहाँ वाहवाही का खूब जोर था। ये कवि जब लड़कियों के पास से गुजरते तो बड़े ही उन्मत्त होकर पदोच्चारण करते थे। कुछ विद्यार्थी

अपने प्रोफेसरों की नकलें उतार कर मखौल उड़ाते और हँस-हँस कर लोट-पोट सड़क के इस किनारे से उस किनारे तक नशे में चूर से लुढ़कते-ढुलकते चल रहे थे। कइयों के मुँह से तो गालों की लतपत करती हुई रालें टपक रही थी। लड़कियाँ भी मंद-मंद मुस्काती अपनी-अपनी सहेलियों से गपशप लड़ाती चली जा रही थी। इस प्रकार हँसी और विनोद का यह काफला मंजिले मकसूद पर पहुँच गया।

पहाड़ों पर पिकनिक स्थल कितने सुन्दर होते हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इस विस्तृत स्थल पर एक बड़ी झील थी। झील के चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी जिससे आँखों को तरावट प्राप्त होती थी। तरह-तरह के वृक्ष खड़े थे, जिनके हरे-हरे पत्ते मंद-मंद शीतल वायु से हिल रहे थे। इधर-उधर जंगली रंग-बिरंगे फल खिले थे जिन पर भँवरे और तितलियाँ इधर से उधर उड़ते बैठते थे। झील के किनारे-किनारे लम्बी-लम्बी घास और दूब का जाल सा बिछा था। झील गहरी थी इसलिये इसका पानी नीला दिखाई देता था। समीप जाकर देखने पर बहुरंग मछलियाँ झील में इधर से उधर विचरती दीख पड़ती थी। झील का पानी स्तब्ध था। हाँ इसका तल कभी-कभी हवा से मंद-मंद हिलता सा शीशा प्रतीत होता था। कोई इसमें जब कंकर आदि फेंकता तो इससे बनने वाले वृत्त विस्तृत होते चले जाते थे जब तक कि वे लुप्त न हो जाते। झील के स्निग्ध वातावरण का आनन्द उठाने के लिये कभी-कभी पक्षियों की पांतियाँ भी उसके ऊपर से उड़ान करती चली जाती थीं। झील की एक ओर सूर्य का प्रतिबिम्ब ऐसी चकाचौंद डालता था कि वहाँ पर किसी की आँख ही न टिक सकती थी। झील से थोड़ा ऊँचा चढ़कर एक चोटी थी। यहाँ से सामने के दृश्य बहुत दूर तक दिखाई देते थे। कहीं कोई ऊँची चोटी बादलों से छूती दिखायी देती थी तो कहीं गहरी घाटी जिसमें बहती हुई बलखाती छोटी नदी रेंगती हुई सर्पिणी प्रतीत होती थी। दूर दराज पहाड़ी जंगलों में इक्के-दुक्के छोटे-छोटे मकान भी दिखाई

देते थे। जिनको देखकर शहरी लोग हैरान होते हैं कि क्या ऐसे निर्जन बनों में भी मनुष्यों का वास हो सकता है। कहीं सामने नंगी भयानक चट्टानें दिखाई देती थीं जिनके बीच में से लकीर की तरह सड़क दिखाई देती थी। यहाँ से देखने पर ऐसा लगता था कि क्या इस पर से भी कोई चल सकता है। मगर सच तो यह है कि पहाड़ों में ऐसी स्थितियाँ नित्य देखी जाती हैं। कहीं वादियों में छोटे-बड़े खेतों की सीढ़ियाँ सी उतरती दिखाई देती थीं। दूरबीन वाले इनमें गऊ बकरियाँ या इक्के-दुक्के स्त्री पुरुष को भी देख सकते थे।

इस झील पर नहाने आदि के लिये कोई विशेष घाट नहीं बने। क्योंकि इसका पानी बड़ा ठंडा है और नहाने में शीत लगने का डर हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसकी गहराई भी काफी बताई जाती है जिस से डूबने का अंदेशा रहता है और कुछ मगरमच्छ आदि का आतंक भी सुना जाता है। इन कारणों से लोग इस स्थान के दर्शन और इससे स्निग्ध वातावरण का लाभ उठाने के लिये गर्मियों के दिनों में यहाँ आया करते हैं। यह कोई तीर्थ नहीं है। झील के एक ओर से पानी प्रचुर मात्रा में नीचे को बहता है।

इस क्षेत्र में पहुँच कर लड़के लड़कियाँ अपनी-अपनी पसंद के स्थान पर बैठ गये। कोई पेड़ के नीचे बैठ गया तो कोई खुले मैदान में लेट गया। कई वैसे ही इधर-उधर भ्रमण करते रहे। कोई कैमरे वाले के आदेश का पालन कर रहा था तो कोई पोज बना रहा था। कैमरे वाले की एक आँख कई बार काली होती रहती थी और वह कभी दायें और कभी बायें टाँग को लंगड़े की तरह झुका कर खिसकता रहता था। कई स्वर लहरियाँ भी हवा में तैर रही थीं। क्योंकि कुछ युवक फिल्मी गानों और गजलों की तरन्नम में मस्त थे। स्वर का ज्ञान हो या न हो परन्तु अपने को सहगल से कम कोई न समझता था। तार में पहुँच कर तो इन गवैयों का स्वर ऐसे चलता था जैसे कोई फटा हुआ टीन पहाड़ी से नीचे को लुढ़कता हुआ आवाज करता है।

कालिज में सहशिक्षा तो थी ही इसलिए लड़के और लड़कियाँ एक दूसरे से बातचीत करने में अधिक संकोच नहीं करते थे। अपने सम्पर्क तथा घनिष्टता के अनुसार कहीं-कहीं लड़का और लड़की पेड़ की छाया तले बातें कर रहे थे। काफी दूरी पर एक अकेली सी जगह थी वहाँ एक लड़का इधर को पीठ फेर कर एक पत्र को बार-बार पढ़ रहा था और फिर इधर-उधर खोज भरी दृष्टि से देखता था। कल उसे यह पत्र मिला था जिसमें लिखा था :

"प्रिय विनोद,

मैं तुम्हारे रूप और स्वभाव पर बलिदान हुआ चाहती हूँ। तुम्हारा जैसा भद्र और गुणी सहपाठी मैंने अपने अब तक के जीवन में नहीं देखा। प्यारे ! मैं कई दिनों से ऐसा अवसर देख रही थी कि कब और कहाँ तुम से भेंट हो। मगर जब ईश्वर ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया है। झील के क्षेत्र से काफी आगे जो पेड़ की आड़ में अकेला सा स्थान है, मैं पिकनिक के दिन वहीं आपसे भेंट करूंगी। प्रिय, तुम वहाँ पर मेरी प्रतीक्षा करना। देखना धोखा न देना। मै तो अब तुम्हारी ही हो चुकी हूँ।

केवल तुम्हारी
'रजनी'

रजनी विनोद की कालिज-फैलो थी। मगर विनोद से उसकी घनिष्टता बिल्कुल न थी। विनोद बार-बार पत्र को पलटता और फिर चोर की तरह इधर-उधर देखता रहता था। इधर मैदान में लड़कों का एक ग्रुप खूब हँसी उड़ा रहा था क्योंकि यह पत्र उनमें से किसी ने लिखा था। विनोद विचारा घण्टों वहाँ प्रतीक्षा करता रहा। रजनी ने न आना था न वह आई। विनोद हताश होकर लौटा था।

झील के परले कोने में इसका पानी कुछ भूमि में अन्दर को कटा हुआ है। वहाँ एक चौड़ा-सा वृक्ष है जिसके नीचे इन्दु और अजय बैठे बातें कर रहे थे।

अजय एक ऐसे घर से सम्बन्ध रखता था। जिसे हम मंझली श्रेणी का कह सकते हैं। अर्थात उसका पढ़ाई-लिखाई का सब खर्च सुविधा से प्राप्त हो जाया करता था। अपना घर था जिसमें आधुनिक युग के सभी सुख साधन विद्यमान थे। संक्षेप में इतना कहना काफी होगा कि उसे अच्छे खाने-पीने पहनने और रहने की सभी सुविधायें प्राप्त थी। तिस पर उसके माता-पिता भी सकुशल थे। अजय का कद दर्मयाना, छाती चौड़ी तथा शरीर दृढ़ था। विशाल ललाट और लम्बी नाक थी। मांसपेशियाँ मजबूत थीं और रंग गोरा था। आँखें झील की तरह गहरी और दृष्टि पैनी थी। उसकी बुद्धि तेज और स्वभाव गम्भीर तथा शान्त था। जो कुछ उसके मन में होता था वही जबान पर भी रहता था। स्पष्ट तथा निर्भीक भाषी था। उसकी छोटी-छोटी मूँछें तलवार-नुमा कटी होती थी और दाढ़ी बिल्कुल नहीं होती था। सिर के बाल सीधे ऊपर की तरफ को बने रहते थे। वह सफेद कमीज और खाकी रंग की पैंट पहनता था। गर्मियों में पाओं में चप्पल डालता था।

अजय इस कालिज का पुराना विद्यार्थी था। मगर इन्दु बी० ए० के बाद ही यहाँ दाखिल हुई थी। इस थोड़ी सी अवधि में ही इन दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। एक चट्टान के सहारे बैठी इन्दु आसमान पर चक्कर काटते हुए एक पक्षी को देख रही थी। अजय ने पूछा, "इन्दु तुम उदास सी क्या सोच रही हो?" इन्दु उसी तरह देखती रही और उसी मुद्रा में अजय की बात का उत्तर देती हुई बोली, "सोच रही हूं कि यह पक्षी आसमान में इस तरह अकेला क्यों चक्कर काट रहा है।"

"इसमें सोचने की क्या बात है। पक्षी अपने पेट भरने की फिक्र में चक्कर काट रहा है।" अजय ने श्वासों के साथ उभरती और उतरती इन्दु की छातियों का अवलोकन करते हुए कहा। इन्दु ने फिर उसी मुद्रा में पड़े-पड़े कहा, "सोचती हूं कि इसके जीवन का क्या ध्येय होगा?"

अजय सिर से पैर तक इन्दु के वस्त्रावृत्त देह को निहारता हुआ बोला, "अरे तुम तो फिलास्फर हुई जा रही हो। आखिर इसके जीवन के ध्येय को जानकर तुम्हें क्या लाभ हो सकता है। इसका तो ध्येय यही हो सकता है कि इसको भरपेट खाने को मिलता रहे। हाँ यदि यह सोचती कि मानव जीवन का ध्येय क्या है तो बात बनती।"

अब वह अजय की तरफ देख रही थी। बोली "वह भी कभी-कभी सोचती हूँ। परन्तु उस पर पर्याप्त साहित्य सुलभ है। इसलिये उसमें सोचने की विशेष आवश्यकता नहीं है। उसमें तो केवल अनुसरण की आवश्यकता है।" यह सुनकर अजय की उत्सुकता बढ़ गई। क्योंकि वह तो जीवन के ध्येय को समझने के लिए यत्न करता रहा परन्तु उसकी सन्तुष्टी नहीं हो पाई थी। और यहाँ यह लड़की बड़ी सरलता से कह गई कि उसमें समझने की बात ही कुछ नहीं थी। लड़की बड़ी समझदार है यह भी वह जानता था। इसने जो बात की है उसमें अवश्य कोई सार होगा। वह एकदम बोल पड़ा "इन्दु तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो।" सुनते ही इन्दु का मुख रक्तिम और हृदय गद्‌गद् हो गया। "क्या है उस साहित्य में जीवन का उद्देश्य ?"

"ईश्वर से लौ लगाना" इंदु ने निश्चित भाव से तुरन्त कहा। आगे कुछ गम्भीर होकर कहने लगी, "मनुष्य और अन्य प्राणियों में यही तो अन्तर है। पशु-पक्षी केवल आहार के लिये जीते हैं। परन्तु मनुष्य तभी मनुष्य है जबकि वह पशुओं से भिन्न रीति का जीवन व्यतीत करता है। वह केवल खाने के लिये नहीं जीता, वह तो जीवन के लिये खाता है। शेष उसी सर्वशक्तिमान प्रभु की स्मृति तथा धन्यवाद में लगाकर अपनी आत्मा को उन्नत करने का यत्न करता है ?"

अजय बड़े गौर से सुनता रहा, फिर बोला, "यह कैसे निश्चित किया गया है कि जीवन का ध्येय ईश्वर से लगन लगाना है ?"

# आत्मा

इन्दु बोली "संसार में दो ही प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से देखी जाती हैं। एक देवी है और दूसरी राक्षसी है। इन्हीं को हम आध्यात्मिक और भौतिक भी कह सकते हैं। जैसे शरीर और आत्मा है। शरीर भौतिक का प्रतीक है तो आत्मा आध्यात्मिक का प्रतीक है। परन्तु आत्मा के बिना शरीर निर्मूल है, जड़ है। इसलिये आत्मा का स्थान प्रथम और शरीर का द्वितीय है। अर्थात् भौतिक पदार्थ से आध्यात्मिक तत्व का स्थान ऊंचा है। आत्मा और परमात्मा ही अमर हैं, शेष सब नशवर हैं। आत्मा शरीर को ऐसे धारण करती है जैसे हम कपड़े धारण करते हैं। जब हमारा कोई कपड़ा खराब हो जाता है तो हम उसे फेंक देते हैं। इसी प्रकार आत्मा जिस शरीर को धारण करती है जब वह खराब हो जाता है तो वह उसे छोड़ देती है और दूसरा शरीर धारण कर लेती है। शरीर के जड़ होने को हम मृत्यु कहते हैं। उसमें से आत्मा निकल कर चली जाती हैं। वह मरती नहीं।" अब तक वह झील की गहराई को निहार रही थी। फिर अजय की ओर देखते हुए बोली, 'तो मेरा कहने का अभिप्रायः यह कि जब ये दो प्रवृत्तियाँ हम रे सामने हैं और उनमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति श्रेष्ठ है। इसीलिये आत्मा की शुद्धि या उसकी परमात्मा से लगन लगाना ही जीवन का ध्येय निश्चित किया गया है।"

इन्दु के इस विद्वत्तापूर्ण भाषण को सुनकर बहुत-से अन्य विद्यार्थी

भी यहाँ खड़े हो गये थे और उनमें से अधिकतर उसके समर्थन में सिर हिला रहे थे।

अजय ने दायाँ हाथ अपने बायें हाथ पर रखते हुए पूछा, "आत्मा की शुद्धि अथवा परमात्मा की प्राप्ति के लिये आपने क्या उपाय निश्चित किये हैं ?"

इन्दु का उत्साह बढ़ गया था। अब वह ऐसे निर्भय और गर्व से बोल रही थी जैसे कोई लीडर तालियाँ बजने पर और जोरदार तर्क तथा उक्तियाँ प्रस्तुत करता है। वह तनिक तन कर बोली "उपाय मैंने क्या निश्चित करने हैं। वे पहले ही निश्चित हैं। आप ज़रा पढ़ने का कष्ट करें। योगाभ्यास है, तप है, व्रत है, सत्संग, हवन, पूजा, भजन आदि भक्ति के अनेक साधन हैं।"

"आपके कथनानुसार तो ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मा शरीर से स्वतन्त्र अमर तत्व है। तभी तो वह शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं हो सकता ?"

"इसमें संदेह ही क्या है।" इन्दु ने उत्तर दिया।

"और आपने उसकी शुद्धि तथा उन्नति के लिये कई उपाय भी बताये।"

"जी हां।" इन्दु ने सिर हिलाते हुए कहा।

अब अजय उंगली के इशारे के साथ,बातें कर रहा था "परन्तु आप इस बात में मुझ से सहमत होंगे कि ये सब उपाय शरीर द्वारा ही किये जाते हैं। मसलन योगाभ्यास के लिये शरीर को विशेष आचरण में रखना होता है। तपस्या भी शरीर ही को तपाने से होती है। व्रत भी पेट को भूखा रखना होता है। सतसंग में भी हम शरीर लेकर ही पहुँचते, हैं और उसका लाभ उठाते हैं। यदि सशरीर आपके सन्मुख इस सतसंग में न पहुँचता तो आत्मा के स्वयं जाने और आपसे बातें करने में मुझे संदेह है। इसी प्रकार हवन, पूजा भजन आदि सब बातें शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा की जाती हैं। ऐसी दशा में जब आत्मा

शरीर के भिन्न स्वतन्त्र तत्व हैं तब शरीर को तपाने से आत्मा की शुद्धि अथवा उन्नति कैसे होगी ? कुर्ते को धोने पीटने से शरीर का मैल कैसे घुल जायेगा ? उसके लिये तो अलग से नहाना पड़ेगा। इस लिये यदि आप आत्मा की शुद्धि व उन्नति का कोई ऐसा उपाय बताते जिससे उसका सीधा सम्बन्ध होता तो बात बनती।"

इन्दु पहली बार निरुत्तर खड़ी रही। उधर से किसी विद्यार्थी ने कहा, "सुनार की ठक-ठक और लोहार की एक।"

जब इन्दु को और कुछ नहीं सूझा तो बोली, "आपकी बातों में कुछ नवीनता है, स्वतन्त्रता है और मौलिकता भी मैंने पहले इस प्रकार की बातें किसी से नहीं सुनी।"

अजय ने फिर कहा, "आपने कहा था कि पढ़ने का कष्ट करें। ऐसा आपका अनुमान गलत था कि मैं बिना पढ़े ही बात करता हूँ। अन्तर केवल इतना है कि मैं किसी बात को पढ़ने और समझने के पश्चात उसका विवेचन कर लेता हूँ। उसके आधार, आदि और अन्त की छानबीन करने का यत्न करता हूं। किसी बात को पढ़ लेने मात्र से उसे अंतिम रूप से ठीक मान लेना बुद्धियुक्त मानव को शोभा नहीं देता। बुद्धिमान तो वही होता है जो अपनी अक्ल से कुछ काम ले।" अजय के इन वाक्यों में अहंकार था। परन्तु आवेश में कह गया और इन्दु चुपचाप सुनती रही। "हाँ तो आगे आपने कहा था कि शरीर तुच्छ है और आत्मा उससे बहुत ऊंची है उसमें देववृत्ति है इसलिये जब वह पहले ही देववृत्तियुक्त है तो उसको उन्नत करने के लिये राक्षस-वृत्तियुक्त शारीरिक यत्न तो सूरज को दीपक दिखाने के समान है। या यूँ कहिये कि अबोध बालक अपने पिता को शिक्षा देने की चेष्टा करता है।" इन्दु ने ठोड़ी पर हाथ रखा और दृष्टि भूमि पर रखती हुई सुनती रही। अजय ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, "इसके प्रतिरिक्त जब कोई कपड़ा फट जाता है तो हम उसे अवश्य बदल देते हैं। एक टांग का पाजामा पहने हमने किसी होशमंद आदमी को नहीं

देखा । तब यदि शरीर आत्मा का वस्त्र है तो हमने ऐसे भी बीसियों व्यक्ति देखे है जिनकी केवल एक टाँग है और बाज औकात एक भी नहीं । कहीं आँखें नहीं हैं तो कहीं कान नहीं । तब वह सम्पुन्नत, प्रगतिशील, स्वच्छ शरीर को पसन्द करने वाली स्वतन्त्र आत्मा ऐसे फटे पुराने और गंदे छिछड़ों को क्यों नहीं छोड़ देती या बदलती । वह सालों उसी में धक्के खाती रहती है ।"

इन्दु हतप्रभ हो गई थी । वह मन ही मन अजय के तर्क और विवेचनात्मक बुद्धि की सराहना करती रही । अजय अभी भी बोल रहा था "सच तो यह है कि शरीर से भिन्न तथा स्वतन्त्र, शुद्ध तथा सम्पुन्नत आत्मा जैसा कोई तत्व है ही नहीं । शरीर और उसके अन्दर की मानसिक वृत्तियाँ अन्योन्याश्रित हैं और मानव तथा उसके समाज के यत्नों के अनुसार उनका विकास और प्रगति होती है । बल्कि इसमें शरीर का स्थान प्रथम है यह बात दूसरी है कि मानव जीवन उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए हम किसको कहाँ तक महत्व देना बाँछनीय समझते हैं । स्वस्थ आत्मा में स्वस्थ शरीर का होना कठिन है, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा हो ऐसा अनुमान कुछ उचित प्रतीत होता है । शरीर के अन्त के साथ उसकी आत्मा का भी अन्त हो जाता है । आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की मृग-तृष्णा की कहीं तृप्ति नहीं होगी चकोरी चाँद को कितने ही प्रयत्नों से भी नहीं छू सकेगी । कहीं आप भी अपने इस फूल से शरीर को इसी वृथा यत्न में बर्बाद न कर दें ।' इन्दु एक टक अजय को देख रही थी । बहुत से विद्यार्थियों के बीच अपने प्रति स्तुति-वचन सुन कर वह लज्जा सी गई । परन्तु विषय की गम्भीरता में लीन वह इस पर अधिक विचार न कर सकी । अजय ने ये वचन किसी दुर्भावना से प्रेरित होकर नहीं कहे थे बल्कि वह साधारण रूप से अपनी बात कर रहा था । "जब अगली बात रहती है ईश्वर से लौ लगाने की ।" अजय ने बात जारी रखते हुए कहा "आपने कहा था कि जीवन का ध्येय ईश्वर से लौ लगाना है । तब

सोचने वाली बात यह है कि ईश्वर से किसकी लौ लगाई जाय ? आप कहेंगे आत्मा की।"

इन्दु तनिक सिर हिला कर बोली, "यह मैं कैसे कह दूँगी। जब आपने यह सिद्ध कर दिया कि आत्मा जैसी शरीर से स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं तब ईश्वर से उसकी लौ लगाने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है।"

तब अजय उसी शांत मुद्रा में बोला "इसलिए अब इस सम्भावना पर विचार करना चाहिए कि क्या इस शरीराश्रित आत्मा का परमात्मा से साक्षातकार हो सकता है ? परन्तु इस पर विचार करने से पूर्व मैं यह जानना चाहूँगा कि आपकी ईश्वर सम्बन्धी धारणा क्या है ?"

यह ऐसा प्रश्न था जिसका उत्तर इन्दु किसी भी समय दे सकती थी। क्योंकि इस पर उसने आर्य समाज में जाकर कई बार चर्चा की थी। वह बोली "ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और निराकार है।"

अजय ने कहा "ईश्वर सम्बन्धी जिन तीन चार विशेषणों का आपने प्रयोग किया उनमें से मैं पहले तीन को अभी छोड़ देता हूँ। आपने जो अंतिम बात बताई उसी से हमारा अभिप्राय सिद्ध हो जायेगा आपका कथन है कि ईश्वर निराकार है। निर्गुण-निराकार ईश्वर से सगुण-साकार शरीराश्रित आत्मा की भेंट हो सकती है इसमें मुझे सन्देह है।"

इन्दु अजय की प्रतिमा पर मुग्ध हो रही थी। वह स्तुतियुक्त गद-गद भाव से बोली "सचमुच आपकी युक्तियाँ अकाट्य हैं। परन्तु मुझे आपकी इन बातों से तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि आप ईश्वर के अस्तित्व तक से इनकार करने जा रहे हैं।" इतने में प्रोफेसर साहब भी वहाँ आ पहुँचे। बोले "क्या बातचीत चल रही है ?"

एक लड़के ने कहा, "यहाँ इन्दु और अजय की डिबेट चल रही है

जिसमें आत्मा परमात्मा सम्बन्धी विषय पर चर्चा हो रही थी।"

प्रोफेसर साहब बोले, "यह तो बड़ा गम्भीर और महत्वपूर्ण विषय है। तो क्या डिबेट समाप्त हो गई ?" नहीं लड़का फिर बोला, "नहीं जनाब अभी चल ही रही है।"

प्रोफेसर साहब ने सब विद्यार्थियों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए कहा, "अच्छा आज तो हमारा पिकनिक का प्रोग्राम है। वह अब शुरू हो जायेगा। ईश्वर सम्बन्धी चर्चा के लिए मैं अगले महीने की २०. तारीख निश्चित करता हूँ। उस दिन इस विषय पर डिबेट होगी। उसमें पक्ष और विपक्ष में जिसने जो कुछ कहना हो निर्भीक होकर कह सकता है। अब चलो।"

इस पर यह मण्डली विसर्जित हो गई। तब तक खाने की सब चीजें तैयार हो चुकी थीं। लड़के लड़कियाँ पंक्तियों में बैठ गए। उनको खाना मिलने लगा। इन्दु और अजय एक साथ बैठे थे। खाना परोसने वाले विद्यार्थी ने उनके सामने कुछ पूरियाँ और तरकारियाँ डालते हुए कहा, "आपकी आत्मायें अधिक भूखी मालूम होती हैं।" वे मुस्करा दिये और खाने में लग गये। डिबेट में चाहे वे एक दूसरे का कितना ही विरोध क्यों न करते हों परन्तु उसके बाद वे मन ही मन एक दूसरे का बड़ा आदर और सम्मान करते थे। इन्दु जहाँ अजय के तर्क, स्पष्टवादिता और निर्भीकता से प्रभावित थी, वहाँ अजय भी उसकी सरल और सद्भावयुक्त धारणाओं से प्रभावित था। वह समझता था कि यह लड़की रूप में सुन्दर है ही मन से भी स्वच्छ है। तब तक कुछ मिठाइयाँ और फल आदि भी उनको मिलने लगे। अजय और इन्दु एक दूसरे से छीना झपटी करके मिठाइयाँ और फल खा रहे थे और इस विनोद का आनन्द ले रहे थे। भोजन से निवृत होने के बाद विशाल विद्यार्थी समूह के सन्मुख किसी ने कविता सुनाई तो किसी ने बाँसुरी बजाई। किसी ने नाच दिखाया तो किसी ने गीत गाया। इन्दु ने मीरा का एक भजन गाया। उसके बाद लतीफ, चुटकले वगैरा

होते रहे और शाम हो गई।

इस आयोजन की आखरी मद में फैन्सी शो रखा गया था। इसमें तरह तरह के दृश्य और झाँकियां प्रस्तुत की गईं। परन्तु अन्य को छोड़ कर जिस झाँकी को पुरस्कार मिला उसी का संक्षिप्त सा विवरण यहाँ कर देते हैं। यह झाँकी अजय की सूझ पर अधारित थी। इसमें इन्दु तथा कुछ अन्य लड़कों और कालिज के संगीत विभाग का सहयोग उसे प्राप्त था।

रंगीन कागजों के तीन बड़े-बड़े गोले बनाये गये थे। एक सबसे बड़ा गोला था जो लाल आग उगलता प्रतीत होता था। यह सूर्य को दर्शाता था। दूसरा अनुपात से काफी छोटा था, जिस पर विश्व के भूमि तथा सागर के मानचित्रों की रूपरेखा और रंग अंकित थे। तीसरा गोला सबसे छोटा था और चमकीला श्वेत था। यह चाँद को प्रदर्शित करता था।

अजय ने अपने ऊपर सूर्य का गोला धारण किया था। उसके अन्दर वह ऐसा छुप गया था कि सिवाये गोले के और कुछ दिखाई ही नहीं देता था। गोले के अन्दर बैटरी के लट्टुओं को ऐसे लगाया गया था कि यह गोला सचमुच सूर्य सा चमकता और किरणें फैंकता प्रतीत होता था। इसी प्रकार अन्य दोनों गोलों में भी रोशनी और रंग का ऐसे मेल रखा गया था कि वे सचमुच भूमि और चांद से दिखाई देते थे। चन्द्र को प्रदर्शित करने वाले गोले को एक छोटे कद वाले लड़के ने धारण किया था। धरती के गोले को इन्दु ने धारण किया।

वाद्यों पर आधारित एक बड़ी ही आकर्षक धुन तैयार की गई थी जिसके लिए कालिज के मियूजिक विभाग ने सहयोग दिया था। इस धुन की ताल अलाप और थाप के साथ ये तीनों गोले नृत्य करते और अपनी-अपनी परिधी पर भ्रमण करते रहे। सूर्य एक ही स्थान पर अपनी धुरी पर घूमता रहा। भूमि अपनी धुरी के अतिरिक्त सूर्य के गिर्द और चन्द्र धरती के गिर्द घूमत रहे। भूमि पर सूर्य की किरणों का

प्रकाश और दूसरी ओर का अंधकार रात दिन को भी दर्शाते रहे। जिस कुशलता के साथ इस दृश्य को दिखाया गया था वह अद्वितीय थी यह दृश्य शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ अत्यन्त रोचक भी बन गया था जब एक बार इसकी धुन की समाप्ति हो गई तो विद्यार्थियों ने 'वन्स-मोर, 'वन्समोर, (पुनःश्चः पुनःश्चः) का नारा लगाया और उनके अनुरोध पर इस धुन तथा नृत्य की आवृत्ति की गई। इसके साथ ही साथ पिकानक का मनोरंजक आयोजन समाप्त हुआ और लड़के लड़कियाँ खुशी-खुशी दौड़ते भागते अपने-अपने घरों को चले गये।

पिकनिक में क्या कुछ हुआ गोविन्द को उसके एक विद्यार्थी दूत ने आदि से अन्त तक कह सुनाया। गोविन्द की बीवी को मरे अभी साल भी नहीं हुआ था। परन्तु जिस दिन से उसकी पत्नी की आँखें बंद हुई थी। उसी रोज से उसकी आँखें जवान लड़कियों पर ज्यादा खुलने लग गई थीं। जिस दिन इन्दु उसके घर गई थी उसी रोज से वह उसके दिल में उतर गई थी।

"अहा ! ऐसा रूप ऐसा यौवन और फिर ऐसी सरलता, वह कभी-कभी जागृत अवस्था में भी उसके स्वप्न देख लिया करता था। अब वह रात दिन इसी चिन्ता में था कि कैसे क्या योजना बनाई जाये कि इस लड़की पर आना काबू हो जाये। कभी-कभी वह माँ को कोसा करता "तुमने बिना कारण ही उस दिन उसको अपशब्द कह दिये। उसके मन में व्यर्थ ही इस घर के प्रति द्वेष भावना भर दी। तुमने तो एक बहु ला दी थी जो शादी के दिन भी न जाने पूजा आदि में किस तरह से बैठ गई होगी। और फिर यहाँ आते ही बिस्तर पकड़ लिया। अगर किसी ऐसी लड़की को पहले ही ढूंढा होता तो आज मुझे रण्डुआ न होना पड़ता।"

बुढ़िया मां अपने बेटे की नस-नस को पहचानती थी। वह जानती थी गोविन्द की बातों में सच्चाई कम है। तिस पर भी चुपचाप घर के धंधों में लगी रहती थी। गोविन्द दफतर में ऐसिस्टैंट इन्जीनियर था।

टैकनीकल हैण्ड होने से उसे ऐसी नौकरी प्राप्त हो गई थी और कुल मिलाकर लगभग ३५० रुपये मासिक वेतन उसे मिल जाता था। इसका कद छोटा था। सिरके बाल माथे में काफी नीचे तक उगे हुए थे। गालें कुछ पिचकी हुई थी। बाकी रंग गोरा और दूसरे सब अंगों की बनावट अच्छी थी। योग्यता का यह हाल था कि एक दिन सैक्शन में किसी ने पूछ लिया कि नर्मदा नदी किधर है झट से बोले, "हिमाचल में"। उसमें एक बड़ी भारी खूबी यह थी कि वह बोलता कम था। यानी उसकी जबान बन्द थी मगर दृष्टि गिध की थी। इन दिनों गोविन्द का ध्यान केवल एक विचार बिन्दू पर केन्द्रित था और वह था इन्दु को प्राप्त करना। गोविन्द का मन और बुद्धि इसी विषय पर गम्भीर विचार निमग्न रहते थे कि क्या-क्या चालें चली जायें जिससे इन्दु अपनी हो सके।

# प्रेम

इन्दु के जीवन में मूक रीति से अजय चला जा रहा था। वह एक अनोखा अनुभव कर रही थी। ऐसा अनुभव जिसका इसने पहले कभी आस्वादन न किया था। उसे अजय की धुन सी लगी रहती थी। वह कई बार घण्टों उसी की याद में गुमसुम सी, खोई-खोई सी रहने लगी। स्वप्नों में उससे मिलती और प्रेम-रस पान करती। मगर ये सब बातें उसके अतिरिक्त कोई न जानता था। कई दिनों इसके मन में एक ज्वार-भाटा सा चलता रहा। उसने समझने का यत्न किया। "आखिर यह कैसी मानसिक दशा है ? यह कैसा दर्द है जिसमें मिठास है ? यह कैसी पीड़ा है जो प्रिय है ? यह कैसी छुरी है जो प्रहार करते ही फूल बन जाती है ? मेरा मन उड़-उड़ कर कहाँ जाना चाहता है ? उन्हीं के चरणों में।" इतना सोचते ही उसके मुख पर हलकी सी मुस्कान दौड़ गई। वह प्रगतिशील थी और साथ ही उसमें उत्साह भी था। उसने अपने मन की दशा को देख कर निश्चय किया, "जब मुझे अजय से प्रेम है तो इसमें बुरा क्या है। मैं अजय से साफ-साफ कह दूंगी। आखिर वह मेरा सहपाठी है। मेरा दोस्त है। तब उससे कहने में संकोच कैसा जब हम अपनी सहेलियों से प्रेम सम्बन्धी सब बातें खुल कर कह सकती हैं, चाहे वे विश्वासपात्र हों या न हों, तब अपने सखा से वही कुछ कहने में क्या शर्म है। और फिर मुझे तो उससे प्यार है। उसके कहने में किसी को डर कैसा ? डर तो तब हो सकता था यदि मुझे किसी से घृणा व्यक्त करनी होती। 'मुझे तुमसे प्यार है' ; यह बात किसी को कैसे ठेस पहुँचा सकती है, किसी को कैसे कड़वी लग सकती है"। इन्दु ने अपने ही तर्क से अपना समाधान कर लिया। उसने तय कर लिया

कि अगले दिन जाकर अजय से सब कुछ कह देगी।

अगले दिन जब कालिज में छुट्टी हुई तो इन्दु कालिज के गेट से बाहर निकलती हुई अजय से बोली, "मिस्टर अजय, आपके पास रोमन-काल के धर्म तथा राज सम्बन्धी विवाद के नोट होंगे ?" अजय चलता चलता रुक गया था। "मुझे राज्य के पक्षवालों के तर्क याद ही होने में नहीं आते। हाँ जो धर्म पक्ष के हैं वे मुझे सारे याद हैं।"

अजय इन्दु के साथ-साथ धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ाता हुआ बोला, "मेरी दशा अब आपसे विपरीत है। मुझे राज्यपक्ष के तर्क तो सब याद हैं परन्तु धर्मपक्ष के याद ही नहीं होते।"

"तो मैं आपके घर चल कर आपकी नोटबुक लूंगी"।

"मैंने इस प्रश्न पर कोई नोट ही नहीं बनाये हैं"।

इंदु हताश हुई मगर प्रकट में बोली, "मुझे इस प्रश्न पर विशेष कठिनाई का अनुभव हो रहा है। क्या किया जाये ?"

"इसमें चिन्ता की क्या बात है। आप मेरे साथ चलें। थोड़ी आप मुझे समझा दें और जो मुझे याद हैं वे मैं आपको समझा दूंगा। अगर आपको कोई एतराज़ न हो तो थोड़ी देर के लिये मेरे घर पधारने का कष्ट करें।" इन्दु का मन प्रफुल्लित हो गया। वह जाना चाहती थी, चलने को राज़ी हो गई। अजय का घर इन्दु के मार्ग ही में आता था। इन्दु का घर वहाँ से काफी आगे चल कर था। थोड़ी ही देर में दोनों अजय के घर पहुँच गये। अजय ने माता-पिता से इन्दु का परिचय करवाया और उसके वहाँ जाने का अभिप्रायः भी बता दिया। उसके माता-पिता लड़की को देख कर प्रसन्न हुए। इन्दु अजय के साथ-साथ उसके पढ़ने के कमरे में चली गई।

सीता राम दोनों के लिये कुछ मिठाइयाँ और फल ले आया। वह हाल ही में गाँव से आकर अजय के यहाँ नौकर हुआ था। अधिकतर अजय ही का कार्य उसके जिम्मे रखा गया था। वह बड़ा सरल और भक्त स्वभाव का व्यक्ति था। जब देखो उसके मुँह में राम राम है।

इन्दु कमरे में लगी तस्वीरों को देख रही थी और सीता राम मेज पर प्लेटें रख रहा था। इन्दु ने पूछा "यह आपका नौकर है ?"

"हाँ हमारे यहाँ काम करता है। आदमी बड़ा ही सज्जन है इमानदारी से अपने काम में लगा रहता है। मुझे बहुत पसन्द है। मेरी सेवा भी बहुत करता है। वैसे हर समय भक्ति में तनमय रहता है।" फिर अजय सीताराम से सम्बोधन होकर बोला, "अच्छा सीताराम यह तो बताओ तुम्हारा भगवान कैसा है जिसका तुम रात दिन भजन करते रहते हो ?"

सीताराम ने कहा, "बाबूजी, मेरे को भजन-शजन कुछ नहीं आता, भगवान तो वही है जो अन्न-धन, दूध-पूत का बरदान देता है। अगर वह नाराज हो जाये तो न वखत पर वर्षा हो और न ही अन्न-धन मिले। दूध-पूत सब चीजों का नाश हो जाता है।"

अजय और इन्दु ईश्वर की ऐसी सरल परिभाषा का आनन्द लेते हुए मुस्करा रहे थे और फलादि खा रहे थे सीताराम अपना काम करके चला गया।

इन्दु विशेष रूप से किस अभिप्राय: से यहाँ आई थी यह उसे भूल नहीं गया था। परन्तु वह एक अजीब उलझन का अनुभव कर रही थी वह जो कुछ कहना चाहती थी उसके मन में था, परन्तु बाहर नहीं निकल पाता था। जितना ही वह इस बन्धन की दीवारों को तोड़ना चाहती थी वे उतनी ही मजबूत होती जाती थीं। इन्दु ने अपने जीवन में ऐसा अनुभव पहले कभी नहीं पाया था। यह जबान और सब कुछ बोल सकती है परन्तु जो कुछ वह कहना चाहती थी उसके लिये न जाने कौन आकर उसे बान्ध देता है। यह कैसी उत्थल-पुत्थल है जो अन्दर ही अन्दर उठती और बैठती रहती है। इन्दु मन की बात कह न सकी।

अजय के कमरे में बीच में एक छोटा सा गोलाकार का मेज था। उसके साथ काउच का सेट लगा हुआ था। कमरे के एक कोने में

एक और मेज़ था जिसके साथ कुर्सियाँ लगी हुई थीं। इसी मेज़ पर उन्होंने चाय पी थी। यह कमरा काफी बड़ा था। इसी के दूसरे कोने में अजय का पलग था और पलंग के साथ भी एक चौकोर छोटा सा मेज़ लगा हुआ था। साथ में दो कुर्सियाँ भी थीं। पलंग के सराहने की तरफ एक रैक था जिसमें कुछ किताबें और कागज़-पैंसिल आदि पड़े रहते थे। मेज पर रंगदार फूल चित्रित एक बड़ा खूबसूरत शीशे का पेपर-वेट पड़ा था। बिस्तरे के इस कोने को एक लकड़ियों के चौखटे पर बना हुआ परदा अलग करता था। पलंग की दूसरी तरफ एक ड्रेसिंग टेबल था जिसमें तीन बड़े बड़े शीशे लगे हुए थे और नीचे दोनों तरफ दराजें लगी हुई थीं। इस मेज़ के सामने केवल एक कुर्सी थी। मेज़ पर एक ब्रुश थी जिसमें दो कन्घे लगे हुए थे। इसी मेज़ के साथ ऊपर खुंटियाँ लगी हुई थीं जिन पर कुछ कोट, पैंट कमीजें लटक रही थीं। कमरे के बीच में जहां काउच का सेट और गोल मेज़ थे, उसके पीछे की तरफ दीवार के साथ दो बड़ी अलमारियाँ थीं। उनके किवाड़ में शीशे लगे हुए थे जिनमें से इन में रखी सब पुस्तकें साफ दिखाई देती थीं। कमरे की दीवारों पर काफी ऊँची कई तरह की तस्वीरें लटक रही थीं। इनमें एक तस्वीर अजय के बचपन की थी। यहाँ पर अजय बच्चा-गाड़ी में बैठा एक बड़ा सा गुब्बारा हाथ में पकड़े हुए था। इस कमरे के चारों कोनों में पीतल के बड़े-वड़े फूलदानों में रंगबिरगे फूल रखे हुए रहते थे। फर्श पर एक बहुमूल्य गालीचा बिछा था, जिस पर तरह तरह के चित्र अंकित थे।

चाय पीने के पश्चात इन्दु और अजय दोनों एक काउच पर बैठे रोमन काल के धर्म और राज्य सम्बन्धी विवाद पर चर्चा कर रहे थे। बातें करते करते ये दोनों एक दूसरे से भिड़ से गये थे। इन्दु के हाथ में एक पुस्तक थी और अजय उँगली लगा कर उससे कोई संदर्भ इन्दु को दिखा रहा था कि इन दोनों की गालें एक दूसरे के झुके हुए मुँह से टकराते टकराते बच गयीं। अजय के सारे शरीर में एक सनसनी सी

दौड़ गयी। वह क्या बात कर रहा था, भूल सा गया। वह तत्क्षण ही पीछे भी हट गया। अजय आश्चर्यचकित हो रहा था कि यह कैसी शक्ति है, कैसा अद्भुत आकर्षण है। यह कैसी गुदगुदी है जो क्षणभर में सारे शरीर में व्याप जाती है। यह मिस्मेरेज़म का सा कैसा जादू है जो हठात अपनी ओर खींचे लिये जा रहा है। मैं पतंग सा इस लौ पर क्यों बलिदान होना चाहता हूँ। अजय का हृदय उसकी बुद्धि पर अधिकार जमा रहा था। वह कुछ अपने ही में सिमट गया, कुछ सम्भला कुछ झिझका। मगर यह निर्भीक था। बोला, "इन्दु, तुम मुझे बहुत प्यारी लगती हो।" विषय बदल गया। इस वाक्य से इन्दु को एक स्वर्गिक आनन्द का अनुभव हुआ। वह पुस्तक के बीच में उँगली डाल कर पहले तो शरमाई सी फर्श पर देखती रही। मगर किताब को बन्द करते हुए बोली, "दोस्त वही होता है जो अपने दोस्त को प्यार करता है। इसमें अनोखी कौनसी बात है।"

"तो तुम भी मुझसे प्यार करती हो ?"

इन्दु चुप रही।

अजय ने फिर कहा, "जवाब दो ?"

"तुम मेरे दोस्त नहीं हो क्या ?" इन्दु प्रश्नात्मक भाव से बोली।

"मुझे पहले कभी किसी से ऐसा अनुभव नहीं हुआ।"

इन्दु कुछ व्यंग से बोली 'सम्भवतः आपने इस विषय की छानबीन तथा विवेचना नहीं की होगी।"

"तुम ठीक कहती हो।"

यद्यपि इन्दु यही बात कहने की इच्छा रखते हुए भी प्रकट करने में असमर्थ रही थी। तो भी उसने अब अपनी ही विजय समझी। उसको घर जाने के लिये देर हो रही थी। वह काउच से उठती हुई बोली "अब मुझे जाना है।"

अजय उठ कर उसके साथ हो लिया और काफी दूर तक उसे छोड़ने गया। लौटने पर वह बिस्तर पर लेटा लेटा आज के अनुभव पर विचार करता रहा। पीछे सीताराम ने आकर समाधि भंग की।

# धूर्त की चालें

इन्दु सुबह कालिज जाती और शाम को घर आती थी। गोविंद किस दिन जाकर बाकी पैसे दे गया उसको इसका पता भी नहीं लगा। उसकी माँ ने इन्दु को जो अपशब्द कहे थे उसके लिये इन्दु की माँ से मुआफी माँग गया था और कुछ अपनी माँ के दिमाग में फतूर की बात भी सुना गया था। ये बातें इन्दु को उसकी माँ ने बता दी थीं।

वह इस छोटे से परिवार पर क्यों मेहरबान हो रहा था इसको इन्दु और उसकी सीधी-सादी माँ समझ न पाई। एक दिन जब इन्दु घर पर नहीं थी तो वह आकर कुछ मिठाइयाँ दे गया। बोला, "हमारे एक रिश्तेदार की शादी थी। वहाँ से मिठाई आई थी। अपने जान पहचान के लोगों में बाँटना जरूरी होता है। इसलिये यहाँ भी ले आया।" गोविंद यह पहले ही पता लगा चुका था कि इन्दु की माँ अत्याधिक धर्मपरायण नारी है। उस दिन पूर्णिमा थी। गोविंद ने अपने घर पर सत्यनारायण की कथा और कीर्तन का आयोजन किया था। उसके घर पर यह पहली बार ऐसा आयोजन हो रहा था। इन्दु की माँ से बोला, "हमारे यहाँ भगवान का कीर्तन और कथा होगी। उसके लिये आपको न्योता देने आया हूँ। आप कृपा करके वहाँ जरूर चलें।"

अन्य कोई कार्य होता तो इन्दु की माँ किसी न किसी प्रकार टाल देती। परन्तु यहाँ तो स्वयं भगवान के कार्य का आहवान था। इसके लिये वह दम में दम रहते कभी इनकार न कर सकती थी। वहाँ पर उसका विशेष स्वागत किया गया। कथा की समाप्ती पर उसे प्रसाद का भाग भी विशेष आदर से दिया गया। वहाँ पर एक औरत से भी परिचय हो गया। यह औरत बहुत बातें बनाती थी। और तेज़ मिर्च

खाकर जबान सारे मुँह में इधर से उधर को दौड़ती है वैसे ही इस औरत की जबान बातें करते वक्त चलती थी। इसने गोविन्द और उसके घर की प्रशंसा करने में इन्दु की माँ का काफी समय नष्ट कर दिया। अन्त में कहने लगी, "ऐसा आदमी हमने तो आज तक देखा नहीं है। आजकल अगर किसी को पचास रुपये महीने के मिल जायें तो सीधे मुंह बात नहीं करता। आदमी तो आदमी भगवान तक को भुला देता है। मगर एक यह है। दफ्तर में अफसर हैं। सैकड़ों आदमी इनके नीचे काम करते हैं। ४०० रुपया तनखाह पाते हैं। मगर सब भगवान के कार्य में अर्पण कर देते हैं। कहीं गरीबों को रोटी खिला रहे हैं तो कहीं नंगों को कपड़े बाँट रहे है। इस घर में तो माँ जी हमेशा सदाबरत लगा रहता है।"

इन्दु की माँ सरल थी। उसने सब कुछ जूं का तूं समझा और बड़ी प्रभावित हुई। 'इस आयु में यह लड़का इतना नेक और धर्मपरायण है। धन्य हैं इसके माता पिता। भगवान की इस पर बड़ी कृपा है।" इन्दु की माँ मन ही मन उसकी प्रशंसा करती रही। वह अधिक देर तक यहां नहीं ठहर सकती थी। उसने-जैसे तैसे उस बातें बनाने वाली महिला से पीछा छुड़ाया और घर चली गई।

इसके बाद भी गोविन्द हर तीसरे चौथे दिन कभी कपड़े देने के लिये और भी कभी लेने के बहाने इस घर में जाता रहा थी। परन्तु वह जब भी आता तब इन्दु घर पर न होती थी। अपनी नेक बातों और स्वभाव से उसने इन्दु की मां को प्रभावित कर दिया।

कालिज की डिबेट का समय पास आ रहा था। तब वह रविवार को इन्दु की उपस्थिति में पहुँच गया। इन्दु खाट पर बैठी डिबेट के लिये तैयारी कर रही थी। इन्दु की मां ने इन्दु की स्टूल से उठाकर गोविन्द को बैठने के लिये दिया। उस पर बैठता हुआ बोला "ऐसी मेहनत से पढ़ने वाली मैंने कोई लड़की नहीं देखी।"

इन्दु की मां कपड़े को कैंची से काटती हुई बोली "बिचारी रात

दिन पढ़ाई ही में लगी रहती है।"

'एम० ए० की पढ़ाई कोई खेल थोड़े ही है। और फिर क्लास में सब से होशियार होना कोई मज़ाक है ? मगर माँ जी यह मानना पड़ेगा कि जिन पर ईश्वर की कृपा होती है वही ऐसे आगे निकल सकते हैं। जिन पर ईश्वर की दया न हो वे चाहे कितना ही ज़ोर दें, पीछे ही रह जाते हैं।"

इन्दु पास बैठी सब कुछ सुन रही थी। ईश्वर कृपा की बात सुन कर उसके मन में आया कि ऐसे धर्मविज्ञ व्यक्ति से बातचीत कर अपनी सामग्री के सामर्थ्य की परीक्षा कर ली जाये। वह पुस्तक पर से मुँह उठा कर बोली, "मैंने सुना है कि आप बड़े धर्मपरायण और ईश्वर भक्त व्यक्ति हैं। मैं आपसे ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहती हूँ। ईश्वर के स्तित्व और अन्य सम्बन्धित बातों पर आपके क्या विचार हैं ?" गोविन्द का तीर ठीक निशाने पर जा लगा। वह इधर-उधर से ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान पर कुछ सामग्री एकत्रित करके इसी अभिप्राय से यहाँ आया था कि किसी प्रकार इन्दु को प्रभावित किया जाये। हिन्दुओं की ऐसे विषयों की चर्चा के लिये हिन्दी बोलने और उसके भी पारिभाषिक शब्दों को प्रयुक्त करने का बड़ा शौक रहता है। हिन्दी आये तो बोलने में कोई हर्ज़ नहीं। मगर जबरदस्ती अपने ज्ञान की महत्ता को दिखाने के लिये जब यत्न किया जाता है तो बुद्धिमान उसे शीघ्र हीसमझ जाते हैं। ऐसी ही दशा गोविन्द की थी। इन्दु के सवाल करने पर ज़रा गम्भीर हो कर उसने कहा "ईश्वर के अस्तित्व से इनकार करना तो बिलकुल मूर्खता की बात है। उसकी बेअन्त माया है। यह संसार उसने बनाया है। इस पर तरह तरह के जीव बनाये हैं। जो वस्तु बनी है, आखिर उसका बनाने वाला कोई न कोई अवश्य होता है।" फिर सामने लटकी कमीज़ की तरफ उँगली से इशारा करते हुए कहा, "यह कमीज़ देखिये, यह पहले कपड़ा था। इस को आपकी माता ने काटा और सीया। तब यह कमीज़ बनी। अपने

आप थोड़े ही बन सकती थी। जिस तरह इस कमीज़ को बनाने वाली माता जी हैं, उसी प्रकार इस विश्व का भी कोई बनाने वाला है। हमारा तुम्हारा भी कोई बनाने वाला है।

इन्दु की माँ इस भक्तिपूर्ण उपदेश से प्रभावित हुई मूक सम्मोदन से सिर हिलाती रही और अपना काम भी करती रही। गोविन्द ने बात जारी रखी, "वह कभी राम के रूप में संसार को तारने के लिये आया तो कभी कृष्ण बन कर।"

इन्दु ने पेंसिल की नोक को किताब की जिल्द पर रखते हुए कहा, "ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में जो कुछ आपने कहा मैं उससे सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु राम और कृष्ण के रूप में ईश्वर आये, यह मैं नहीं मानती।"

"तो आप क्या मानते हैं?"

'मैं तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानती हूँ। राम और कृष्ण में ईश्वर का होना केवल उनके शारीरिक अस्तित्व तक सीमित हो जाता है। तब वह सर्वव्यापक नहीं रह सकता। हाँ मैं यह मानती हूँ कि राम और कृष्ण बड़े आदमी थे।"

गोविंद जानता था कि वह इस लड़की से तर्क में टक्कर नहीं ले सकता। और न ही उसका यह अभिप्राय: था। वह कुछ रुक-रुक कर कहने लगा, "तब आप . उसके...अस्तित्व को...कैसे...प्रमाणित... करते...हैं।"

"क्या आप दूध में पानी को देख सकते हैं?" इन्दु ने पूछा।

"प्रतक्ष तो दूध ही दिखाई देगा।"

"परन्तु आप जानते हैं कि दूध में पानी मौजूद है?"

"वह तो हमारी ग्वाले से रोज इसी बात पर लड़ाई होती है।" गोविंद तुरन्त अप्रसंगिक बोल पड़ा।

"इसी प्रकार ईश्वर भी संसार में सर्वव्यापक है। परन्तु उसको देखना ऐसे ही कठिन है जैसे दूध में पानी को।"

"तब हम उसे कैसे देख सकते हैं ?" गोविंद ने एक बार और पूछा।

"प्रश्न कठिन था। परन्तु इन्दु ने क्षण भर चुप रहने के पश्चात कहा, "उसे साधारण आँखों से नहीं देखा जा सकता। उसके लिये ज्ञान-चक्षु चाहियें। अर्थात् उसे ज्ञान द्वारा ही समझा जा सकता है।"

गोविंद ने खूब अभिनय किया। वह दीन भाव से बोला, "देवी धन्य हैं आप। आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं तो अब तक अँधेरे में था। मैं तो समझता था कि आप भी आजकल की कालिज की साधारण लड़कियों की तरह होंगी। लेकिन आज मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि ईश्वर ने आपको मेरे कल्याण के लिये भेजा है।" गोविंद ने दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से लगा दिये और आँखें बन्द करके कहने लगा, "हे भगवान आपकी बड़ी कृपा है। मेरे कल्याण के लिये मुझे कहाँ से भेज दिया। सचमुच तेरी माया अपरमपार है।' इन्दु, इस श्रद्धामई दीनता और निजस्तुति के कूएँ में सरापा डूब गई। वह सरल थी। अनुभवहीन थी। वह जो कुछ जैसा देखती थी उसे वैसा ही समझती थी। उसका अन्तःकरण आत्म-प्रशंसा और विजय से गर्वान्वित हो रहा था। इन्हीं भावों में रमी हुई वह बोली, "यह आपकी बड़ी कृपा है। वरना मैं क्या जानती हूँ। कालिज में डिबेट है, उसके लिये तैयारी कर रही थी। आपसे वार्तालाप करके एक पंथ दो काज वाली बात हो गई। यानि कुछ ज्ञान की प्राप्ति भी हो गई और साथ में डिबेट की तैयारी भी।"

"मैं तो कहता हूँ कि कालिज का पुरस्कार भी आप ही को मिलेगा। आपसे कौन टक्कर ले सकता है। आप जैसी नारी से सम्पर्क स्थापित करके मैं अपने को धन्य मानता हूं। और उस सर्वव्यापी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपके दर्शन नित्य प्राप्त होते रहें।"

जब दो गाँधीवादी आपस में बातें करते हैं तो सत्य को जानने वाला तीसरा कौन रह जाता है। गोविंद ने इन्दु का जो समर्थन किया

तो इन्दु ने समझा कि उसकी खोज का अंत यही है। यहाँ से आगे अब कुछ शेष नहीं रह जाता। उसे घमण्ड हो गया। इस अभिमान से वह विषय की गहराई तक न पहुँच सकती थी और न पहुँची। वह पुस्तक को दोनों हाथों में थामे अपनी जंघाओं पर रखते हुए बोली, "मैं आप जैसे व्यक्ति को इसलिये बहुत पसंद करती हूँ कि आप जिद नहीं करते। बहुत से लोग अपनी ही बात पर अड़े रहते हैं। चाहे कितना ही तर्क उनके सन्मुख प्रस्तुत करो वे ज्यों के त्यो अड़े रहेंगे। तब तो बहस केवल बहस के लिये रह जाती है। ऐसी बहस से किसी को कुछ लाभ नहीं हो सकता। मेरी तो अपनी यह आदत है कि यदि मैं किसी बात को एक बार ठीक समझ जाऊँ, तब चाहे वह मेरे विरोधी ही ने क्यों न कही हो, मैं झट मान जाऊँगी।"

"आप में बड़े गुण हैं।" इतना कह कर गोविंद खड़ा हो गया। "अच्छा, मुझे देर हो रही है। मैं आपकी मीठी-मीठी बातों में भूला रहा। फिर कभी दर्शन करूँगा। नमस्ते।"

इन्दु जो कि अब तक खड़ी हो चुकी थी बोली, "नमस्ते।"

फिर गोविंद ने इन्दु की माँ की ओर हाथ जोड़कर कहा, "माँजी नमस्ते।" और चला गया।

इन्दु सोचने लगी, यह आदमी बुरा नहीं है। समझदार मालूम होता है तभी तो अफसर भी बना होगा। वरना अफसर बन जाना कोई आसान बात है। इतने में इन्दु की दृष्टि अपने नोट बुक पर पड़ी वह देखकर मन ही मन कहने लगी, "देखती हूँ इस दफा मुझसे कौन जीत सकता है। आखिर यह तो मेरी पसन्द का विषय है। इसमें भी हार खाई तो मजा ही क्या है।" इन्दु को व्यर्थ का अहंकार हो रहा था। "इस दफा तो अजय को भी इसी तरह हथ्यार फेंकने पड़ेंगे जैसे अभी गोविन्द को फेंकने पड़े।" अजय का ख्याल आते ही वह कुछ ख्यालों में गुम सी हुई अपने खाट पर बैठी सोचती रही।

# डिबेट

**वेद प्रामाण्यं कस्मचित् कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।**
**सन्तापारंभः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानाम् पंचलिंगानि जाड्ये॥**

'धर्मकीर्ति'

डिबेट का दिन आ पहुँचा। कालिज के हाल में डिबेट का आयोजन किया गया था। कालिज के युवक और युवतियाँ तैयारियाँ करके अपने-अपने समर्थकों के साथ यथोचित स्थानों पर बैठ गये। हाल में खूब चहल-पहल थी। सामने प्रोफैसर साहब की कुर्सी मेज़ थी। मेज़ पर रंग-बिरंगे फूलों का एक बड़ा सा गुलदस्ता शीशे के गिलास में रखा था। साथ ही लफाफे में बन्द एक पुस्तक वहाँ और पड़ी थी। इधर हाल में दोनों ग्रुप के मुखिया सब से आगे बैठे थे। ईश्वर पक्ष में जो ग्रुप था उसका नेतृत्व इन्दु कर रही थी और विपक्ष में जो ग्रुप था उसका नेतृत्व अजय कर रहा था। परन्तु यह स्पष्ट दीख रहा था कि अजय की ओर विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम थी और मजेदार बात यह है कि उनमें एक लड़की भी न थी। जब कि इन्दु के ग्रुप में लड़के लड़कियाँ सभी की संख्या बहुत ज्यादा थी। यह दृश्य लोक-सभा के समान मालूम हो रहा था। और इन्दु सदन की नेत्री प्रतीत होती थी। अजय विरोधी दल का नेता मालूम हो रहा था।

प्रोफैसर साहब हाल में दाखिल हुए, तब सब विद्यार्थियों ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। वह सब की तरफ हाथ जोड़ कर उनके अभिवादन को स्वीकार करते हुए कुर्सी पर बैठ गये। ऐसे प्रोफैसर और ऐसे कालिज बहुत कम देखे जाते हैं जो शिक्षा का महत्व जीवन के लिए समझते हुए विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। अन्यथा प्रायः यह देखा जाता है। कि शिक्षा कालिजों में केवल पुस्तकों तक सीमित रह जाती हैं। जिससे विद्यार्थी लोग डिग्रियां तो प्राप्त कर लेते हैं परन्तु

आगे चल कर जीवन में असफल हो जाते हैं।

इस कालिज में भी केवल एक प्रोफेसर था जो इस ओर दिलचस्पी दिखाता था। वरना प्रोफेसर भी कालिजों में केवल अपनी हाजरियाँ पूरी करने के लिये और वेतन प्राप्त करने के लिये जाते हैं। पढ़ाई के दौरान जो वांछनीय आचरण के विद्यार्थीयों के लिये बताते हैं स्वयं उस पर चलने की चेष्टा ही नहीं करते। तभी तो भूगोल (ज्योग्रेफी) को पढ़ाने वाले प्रोफेसर भी पूर्णिमा के दिन व्रत रखते पाये गये हैं। विद्यार्थियों को तो बतायेंगे कि यह एक सिद्ध सत्य है कि चन्द्रमा भी पृथ्वी के समान ही एक ग्रह है। पर कोई विद्यार्थी उसके विरुद्ध कहने का यत्न करे तो हजार प्रमाण सामने रख देते है और उस विद्यार्थी को कह देते हैं कि तुम्हारी धारणायें बिलकुल निर्मूल हैं, इससे काम नहीं चलेगा। परन्तु जब पूर्णिमा का दिन आता है तो उसी चन्द्रमा के गोले को कोई दैवी शक्ति मान कर उस दिन व्रत रखते हैं। इस प्रकार के अन्य भी अनेकों उदाहरण देखे जाते हैं। फिलहाल उनसे हमारा प्रयोजन नहीं है। हम तो डिबेट की बात कर रहे हैं। और बताने का अभिप्रायः है कि इस कालिज मैं यह प्रोफेसर साहब बड़े ही समझदार महानुभाव थे और इन्हीं के सभापतित्व में आज की यह डिबेट हो रही थी।

जिन विद्यार्थियों ने विशेष रूप से डिबेट में भाग लेना था उनकी सूची उनके सन्मुख पड़ी थी। प्रोफेसर साहब ने सूची को देख कर कहा "यह ठीक है कि इन विद्यार्थियों ने विशेष रूप से इस डिबेट में भाग लेना है। परन्तु मैं आज्ञा देता हूँ कि उनके अतिरिक्त कोई भी विद्यार्थी इस डिबेट में भाग ले सकता है। परन्तु दो बातों का ध्यान सब अच्छी तरह से रखें। यानी एक तो सब लोग अनुशासन के साथ बैठे रहें और दूसरे असंगत बातें बीच में लाकर समय का नाश न करें। अब मैं मिस्टर राकेश से कहूँगा कि वह इस डिबेट को आरम्भ करें।" इतना कह कर प्रोफैसर साहब बैठ गये। और अपनी दोनों बाहें मेज़ पर कोहनी के बल रखकर एक दूसरी पर कर दीं और वक्ता की ओर दृष्टि रखी।

# भाग्यचक्र

राकेश ईश्वर पक्ष में था। वह खड़ा होकर अपने सामने रखे एक छोटे से कागज़ पर दृष्टिपात करते हुए बोला, "मेरे विचार में जो कुछ भी, जहाँ भी हो रहा है वह सब पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार हो रहा है। भाग्यचक्र, किस्मत अथवा फैट, उसे जो भी कहो-उसी के अनुसार सब कुछ चलता है"।

यह सुनकर अजय के ग्रुप से एक विद्यार्थी ने उठकर आपत्ति प्रस्तुत करते हुए कहा "जनाब आज तो ईश्वर सम्बन्धी विषय पर डिबेट रखी गई है। इन्होंने तो भाग्य का नया ही शोशा रख दिया है। यह असंगत है।"

प्रोफेसर साहब ने फरमाया "नहीं, हमने ईश्वर तथा उससे सम्बन्धित विषयों पर डिबेट रखी है। इसलिये यदि श्री राकेश समझते हैं कि भाग्य का विषय भी ईश्वर से सम्बन्धित है तो वह इस पर चर्चा कर सकते हैं।"

राकेश झट उठ बोला, "जी हाँ, मेरा ऐसा ही विश्वास है।"

कुछ विद्यार्थी गर्दन झुकाये बैंच पर बैठे अपने-अपने साथियों से खुस-पुस, खुस-पुस बातें कर रहे थे। वे क्या बोल रहे थे उसको कोई नहीं जानता।

जब अजय खड़ा हुआ। वह गम्भीर मुद्रा में था। उसकी दृष्टि तो

विद्यार्थीगण, हाल तथा प्रोफैसर साहब सब ओर थी। परन्तु ऐसा मालूम होता था कि वह इन सब को कुछ ऊपरी सी दृष्टि से देख रहा था और उसका ध्यान कहीं और था। उसे खड़ा होते देख कर इन्दु तथा अन्य सभी उपस्थित जनों की नजरें उस ओर लग गईं। हाल में सन्नाटा छा गया। पीछे बैठे विद्यार्थियों की गर्दनें आगे देखने के लिये ऊँची हो रही थी। यह जानने के लिये कि अजय क्या कहेगा सब उत्सुकता से उसकी ओर निहार रहे थे। तब अजय अपने बायें हाथ की उंगलियां डैस्क पर रखते हुए बोला, "यह मानकर कि भाग्यचक्र के पूर्व निश्चित आयोजन के अनुसार सब कुछ चलता है हम मानव जाति के श्रम पर जो कि संसार का सर्वस्व है पानी फेर रहे हैं और उसके फल स्वरूप जो संसार की प्रगति हुई है उसके प्रति अपनी आँखें मूंद रहे हैं।"

राकेश ने उत्तर देते हुए कहा, यह कैसे हो सकता है। हमारी जो भी प्रगति हुई है वह सब भी भाग्य ही के कारण है। कोई क्या करता है। जो कुछ भी कोई करता है उससे उसका भाग्य ही, पूर्व निश्चित निर्याति के प्रबन्धानुसार करवाता है तुच्छ मानव क्या कर सकता है।

"तब तो भाग्यवादी बड़े कृतघ्न हैं मिस्टर राकेश।"

"किस तरह ?" राकेश ने प्रश्न किया।

"मान लीजिये मैं किसी कठिन समय में अपनी जान जोखम में डाल कर आप की सहायता करता हूँ। आप अपना काम सिद्ध हुआ देखकर झट कह देंगे कि मेरे भाग्य बड़े अच्छे थे कि इस विपत्ति से छुटकारा हो गया। किसी ने आपके लिए क्या किया।"

"भाग्यवादी अहसान-फ़ामोश हैं !" राकेश ने गर्दन खुजलाते हुए आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।" आप से भी तो मेरी सहायता तभी होगी जब मेरे भाग्य में आपकी सहायता होगी।" राकेश ने आगे कहा।

"मिस्टर राकेश मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यदि आपकी बात को ठीक मान लिया जाये तो मनुष्य जो कुछ करता है वह भाग्य-

चक्र के प्रबन्ध में बाधा ही डालता है।"

किस तरह ?"

"क्योंकि मानव ने अपनी सुविधा के लिए बहुत सारे संगठनों और संस्थाओं का प्रबन्ध कर रखा है। वह नियति के अपने प्रबन्ध में बाधा ही हो सकते हैं। हम एक उदाहरण लेते हैं। गोडसे ने गाँधी पर गोली चलाई। आपके अनुसार गोडसे के भाग्य में गाँधी पर गोली चलाना निश्चित था और उसने भाग्य के आदेश का पालन किया। इसी प्रकार गाँधी के भाग्य में गोडसे की गोली से मृत्यु निश्चित थी। उसने उस को भुगता। तब लोगों को इस हत्या के विषय में शोर शराबा करना और फिर पुलिस का गोडसे को पकड़ना अदालत का उस पर मुकद्दमा चलाना और उसे सजा देना यह सब नियति के प्रबन्ध में बाधा डालना नहीं तो और क्या है ?" अजय ने तब डैस्क पर हाथ पटकते हुए कहा 'इसके अतिरिक्त आपके देश में जो पंच वर्षीय विकास योजनायें बनाई गई हैं। वे सब आपके सिद्धान्तानुसार बिल्कुल फिजूल हैं। क्योंकि जो कुछ जिसके भाग्य में पड़ा है वही तो होगा। हम गरीबों के जीवन स्तर को ऊँचा करने के लिए क्यों ढोल पीटते रहें। भाग्य स्वयं ही करेगा। जो अछूत है, जब तक उसके भाग्य में अछूत रहना निश्चित है तब तक वह रहे। पश्चात यदि भाग्य में होगा तो मुक्ति पायेगा नहीं तो मरे। जिसके भाग्य में भूखा रहना है वह भूखों मरे। जिसके भाग्य में नंगा रहना है वह नंगा फिरे। हम किसलिए सिर दर्द ले। आपको विदेशी सेना आदि से डरने का कोई कारण नहीं होना चाहिए। आपके भाग्य में होगा तो आप पर कोई आक्रमण ही नहीं कर सकता और यदि भाग्य खोटे हुए तो आपके देश को लूट ले जायें। कश्मीर की समस्या भाग्य स्वयं हल कर देगा। और धृष्टता के लिए क्षमा कीजिये यदि कभी आपके किसी रिश्तेदार को कभी ऐपैंडसाइटिस हो जाये तो हस्पताल पहुँचाने की आवश्यकता नहीं। भाग्य में होगा तो ठीक हो जायेगा नहीं तो·····।"

"प्रोफैसर साहब ने आखरी दो वाक्यों को सुन कर कहा, "मिस्टर अजय, कोई वैयक्तिक टिप्पणी नहीं की जानी चाहिए।"

'इसके लिए क्षमा चाहता हूँ श्रीमान' अजय ने अपनी बात को जारी रखा। "कितने स्वार्थी हैं ये भाग्यवादी। क्या हम यूँ कहें कि भारत के भाग्यर्थ ही सन् १९४७ में उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इसके लिए गाँधी ने कुछ नहीं किया। जवाहरलाल नेहरू ने कुछ नहीं किया भगतसिंह ने कुछ नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने फजूल ठोकरें खाईं उन हजारों लाखों शहीदों के बलिदान का जिन्होंने अपना सर्वस्व लुटा दिया आजादी हासिल करने के लिए कोई फल नहीं हुआ? इतना कह कर अजय बैठ गया।

तब राकेश अपने पहले तर्कों को लड़खड़ाता देखकर फिर उठा और उसने भाग्य की एक और परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा मैं भाग्य को भगवान प्रदत्त एक महान शक्ति मानता हूँ। क्या हमारे सामने कई ऐसे केसिज नहीं आते कि एक आदमी अभी-अभी अच्छा खासा बोलता और चलता है। फिर एकाएक उसकी जबान बन्द हो जाती है या मर जाता है। आखिर यह क्या है? कभी हम खाना खाने बैठते हैं। थाली सामने परोसी होती है। यहाँ तक कि कौर भी हाथ में लिया होता है इतने में कोई ऐसी सूचना मिलती है कि हम एक कौर तक छोड़ देते हैं यह किस शक्ति का प्रभाव है। यह भाग्य नहीं तो और क्या है?"

अजय फिर उठा, "मिस्टर राकेश, पहले तो मैं यह देख रहा हूँ कि आप इक्के-दुक्के अर्थात अपवाद दृष्टान्त प्रस्तुत करके अपनी बात को सिद्ध करना चाहते हैं। अपवाद रूप में आपको ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो मोटर को फुल-स्पीड में होने पर भी हिलने नहीं देते। आँख की पुतली से लोहे के तेज भाले मोड़ देते हैं। बिजली के लट्टुओं को चबा जाते हैं। मौसम के बिना ही झटपट आपके लिए चमन के अंगूर और नागपुर के संतरे उपस्थित कर देते हैं। मगर देखना यह होता है कि यह बात आम लोगों के लिए कहाँ तक लागू हो सकती है।

आपने जो अपवाद रूप खाने सम्बन्धी उदाहरण रखा है, वहाँ तो केवल समझने की बात है। यदि आप कोई दुस्सह समाचार सुन कर खाना छोड़ देना चाहें तो छोड़ देते हैं और यदि तब भी खाना चाहें तो आपको रोक भी कोई नहीं सकता।

जहाँ तक ज़बान बन्द होने या मर जाने का सवाल है यह बात तो चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल साइंस) से सम्बन्ध रखती है। कोई हृदय की गति रुकने से मर जाता है। हृदय की गति कैसे और क्यों रुक जाती है यह आपको कोई डाक्टर ही अच्छी तरह समझा सकता है।

तब रह जाती है बात यह कि भाग्य एक महान शक्ति है तो इस का हम आगे परीक्षण करते हैं। आप यह बताइये कि यदि आपके सामने एक जंगली भैंसे की शक्ति हो और जो सम्भव है अपने सींगों से आप का पेट फाड़ दे और दूसरी शक्ति एक घरेलू बैल की हो जो आपका हल जोतने, चक्की चलाने में सहायता करके आपको भोजन प्रदान करे शक्तियाँ दोनों हैं। ऐसी दशा में यदि आप शक्ति के उपासक हैं तो किस शक्ति को पसंद करेंगे ?"

'लाज़मी तौर पर बैल की शक्ति को।" राकेश ने उत्तर दिया।

"अर्थात उपयोगी शक्ति को" अजय ने बदला हुआ वाक्य प्रस्तुत करते हुए कहा। "तो समझ लीजिये भाग्य एक बड़ी भारी शक्ति है जैसा कि आप मानते हैं। मगर जब देखना यह है कि क्या यह एक उपयोगी शक्ति है अथवा हानिकारक जंगली भैंसे की। इस भाग्य के शासन को हम जिस तरह से अपनी आँखों के सामने देखते हैं उसके अनुसार हमारा अच्छा अनुभव नहीं हो सकता। हर वर्ष प्रलयंकारी बाढ़ें आकर हजारों लाखों लोगों की मृत्यु का कारण होती हैं। इसी प्रकार अकाल से लाखों प्राणी तड़प कर मर जाते हैं बंगाल का अकाल आपको क्या मालूम न होगा। कोई हैलीकप्टर में सैर करता है तो किसी को बिमारी की दशा में एक टाँगा तक सुलभ नहीं होता है। कोई दस

दस पकवान खाता है तो किसी को भर पेट सूखी रोटी भी प्राप्त नहीं होती। बहु-मूल्य जनता कष्ट भोग रही है और चन्द व्यक्ति ऐश व आराम का जीवन व्यतीत करते हैं। मानव इतिहास में एक ऐसा भी समय था जब आदमी-आदमी को भेड़ बकरी की तरह बेचता रहा है। दास प्रथा आपको याद होगी। उसका संक्षिप्त सा विवरण मैं आपके सामने प्रस्तुत कर दूँ।

माँ की छाती का दूध पीते पुत्र को छीनकर भरे बाजार में नीलाम किया जाता था। पाच २ छः २ बच्चों के पिता को विदेश के व्यापारियों को बेच दिया जाता था। इसी प्रकार कई कई बच्चों की माताओं को पतियों से अलग करके बेच दिया जाता था। जीवन पर्यन्त वे अपने बच्चों और पति को एक कुशल सदेश तक न भेज सकते थे। बूढ़ी माँ यदि प्रार्थना करती कि उसे और उसके इकलोते पुत्र को कृपा करके एक साथ इकट्ठा नीलाम किया जाय तो उसे धक्का मार कर पीछे धकेल दिया जाता था। कहा जाता था कि तुम्हारी वजह से नये छोकरे की कीमत भी कम मिलेगी। माँ बिलखती रहती थी। हर नीलाम किये जाने वाले दास को उसके अगों की कीमत लगा कर बेचा जाता था। नीलामी करने वाला कहता था "इतने डालर इसके मजबूत सिर के लिये, इतने डालर या पण इसकी चौड़ी छाती के लिये इतने डालर इसकी मजबूत टाँगों और बाहों के लिये। इतने डालर इसकी कार्यकुशलता के लिये, इतने डालर इसकी जवानी के लिये, इतने डालर इसकी शिक्षा के लिये, इतने डालर इसकी आयु के लिये, इतने डालर इसकी स्वामिभक्ति के लिये और इस प्रकार कुल कीमत इतने डालर उस युग में यह सब कुछ वैध था। यह व्यापार किसी देश विशेष तक ही सीमित नहीं था अपितु सारे संसार में होता था। लाखों करोडों मानवों ने इस कष्ट को भोगा और सदियों के सघर्ष के पश्चात उससे मुक्ति प्राप्त की। यद्यपि आज के संसार में दास प्रथा नही है। इनसान को उस समय की तरह बेचा या खरीदा नहीं जाता तो भी शोषण लुप्त नहीं

हो गया है। आज भी हम धनी और धनहीन की कशमकश देख रहे हैं। अमीर और गरीब की दौड़ धूप देख रहे हैं। बाबू और मुण्डुओं का व्यापार देखते हैं। गरीब मज़दूर के पास केवल एक ही सम्पत्ति है और वह है उसका श्रम। वह बिचारा उस श्रम की प्रतियोगिता पर आधारित बाज़ार के भाव में बेचने के सिवा कुछ नहीं कर सकता। उसके पास केवल दो ही विकल्प हैं। या तो पूंजीवादी द्वारा प्रस्तुत कीमत पर अपने श्रम को बेच डाले या स्वयं तथा अपने परिवार सहित भूखों मरे। इसका मुख्य कारण यह है कि सम्पत्ति चन्द हाथों में ही सीमित होकर रह गई है। वे अपने उन हाथों को खोलते ही नहीं हैं। यदि उनके हाथों को तोड़ने के लिये आगे बढ़ना है तो कानून उनकी रक्षा के लिये आगे बढ़ आता है। क्योंकि कानून भी उन्होंने अपनी रक्षा के लिये बनाया है। अब भी औरतों और बच्चों से भारी काम लिया जाता है। इस बीसवीं सदी में उनको भरपेट रोटी नहीं मिलती है। ऐसा आपके भाग्य का चक्र है। ऐसे भाग्य की करामात है। असली बात तो यह है कि पूंजीपतियों ने इस प्रकार का यह हथ्यार निरीह जनता से लाभ उठाने के लिये अपनाया है। और बिचारी सीधी सादी अनपढ़ जनता इसको ठीक मान कर पूंजीपतियों के विरुद्ध आवाज़ न उठा कर अपने भाग्य के लिये रोती और यातनायें झेलती रहती है। तो यह है वह शक्ति जिसे आप ईश्वर प्रदत्त भाग्य कहते हैं। इस शक्ति को आपने देखा और इसके परिणाम मैंने आपके सन्मुख रखने की चेष्टा की। अब आप मानव निर्मित भाग्य प्रदाई भाखड़ा डैम की शक्ति से इसका मुकाबिला कर देखिये। इस हालत में आपको मालूम हो गया होगा कि भाग्य में यदि शक्ति है भी तो यह एक जंगली भैंसे की शक्ति है। यह उपयोगी नहीं अपितु विनाशकारी है। यदि अब भी आप ऐसी मान्यता के उपासक हैं तो मुबारिक हो आपकी ऐसी पूजा और ऐसी मान्यता। और इस प्रकार के उस भाग्य के निर्माता भी आप ही को मुबारिक हों। अजय बैठ गया।

# ईश्वर

अब इन्दु चुपचाप सुन रही थी। राकेश साफ तौर पर मैदान हारता दिखाई दे रहा था। वह उठी, सब उपस्थित जन उस ओर देखने लग गये। इस युवती में सुन्दरता के साथ-साथ गुण भी थे। विद्यार्थीगण मन्त्रमुग्ध से उस ओर देख रहे थे। इन्दु के अधर हिले। वह बोली, "मिस्टर अजय, अब तो स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आप ईश्वर के अस्तित्व से भी इनकार करने जा रहे हैं।"

"मेरे विचार में जो बातें भाग्य के लिये ठीक थीं वही ईश्वर के लिये भी समान रूप से लागू होती है।" अजय ने उत्तर दिया।

"तब आप यह बताइये कि इस सृष्टि का रचने वाला, हमारा तुम्हारा बनाने वाला कौन होगा ?" इन्दु ने प्रश्न किया।

"यदि इसका उत्तर आप ही दें तो बड़ी कृपा होगी।"

इन्दु उत्साहित हुई। झट बोली, "मैं तो साफ मानती हूँ कि इस सृष्टि का और हमारा तुम्हारा बनाने वाला वही ईश्वर है।"

"और मैं यह जानता हूँ कि उस ईश्वर का स्रष्टा मानव है।"

"यह तो आप बिल्कुल उलटी बात कर रहे हैं।"

"मैं उलटी बात कर रहा हूँ यह आपकी बुद्धि उलटी बातों को सीधा समझने की अभ्यस्त हो गई है, इस विषय में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। साधारण सी बात यह है कि आप पहले अपने पैरों की तरफ देखने का यत्न करें और समझें कि आप इस पृथ्वी पर खड़े हैं। आसमान पर बहुत ऊँचा उड़ना फिलहाल छोड़ दें।

आपने इतिहास पढ़ा है। मानव शास्त्र भी पढ़ा होगा। पत्थर के धात के युग को आप जानते हैं। मानव का पत्थर और हड्डियों के हथियारों के प्रयोग करने के सम्बन्ध में भी आपने पढ़ा होगा। पेड़ों की छालो, पत्रों और खालों आदि के वस्त्रों के प्रयोग के विषय में भी आपने सुना होगा। तो उस समय का ऐसा जंगली मानव ईश्वर को न जानता था। न उसमें इतनी बुद्धि ही थी कि वह इतनी गहराई तक उड़ान और छानबीन कर सकता। धीरे धीरे जब उसकी बद्धि का विकास हुआ तो उसको पानी, हवा, अग्नि सूर्य और चाँद आदि के बारे में अचम्भा होने लगा। इतना सारा पानी कहाँ से आता है। यह हवा क्यों चलती है। आग कैसे जला देती है। सूर्य क्यों चमकता है। चाँद में प्रकाश काहे का है। इन सब के प्रश्नों के उत्तर उसकी अल्प विकसित बद्धि न दे सकती थी और न उसे कोई उत्तर मिला। वह जब समझ न सका तो उसने उन्हें केवल देवी शक्तियां मान कर उसकी पूजा आरम्भ कर दी। सब कोई जल देवता, कोई पवन देवता, कोई अग्नि देवता, कोई सूर्य देवता तथा कोई चन्द्र देवता के रूप में उदय होने लगे। जूं जूं मानव ने प्रगति की तूं तूं उसकी समझ में इन सब शक्तिके राज़ आने लगे। आज हम जानते हैं कि चाँद पृथ्वी से टूटा हुआ एक टुकड़ा है। वहाँ भी पहाड़ हैं, घाटियाँ हैं। हमने उनके नाम भी रखे हैं। उस तक पहुँचने के यत्न भी हो रहे हैं और अमरीका तथा रूस के कृत्रिम चान्दचन्द्र 'एक्सपलोरर' और 'स्पूतनिक' आज लगातार पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं। हम यह भी जानते हैं कि पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन का मिश्रण है। इस प्रकार जब मनुष्य इन शक्तियों के राज और सीमा को जान गया तो उसने उनकी पूजा छोड़ दी। तब वह इनके भी कर्ता को ढूंढने लगा। परन्तु जब उसे कुछ पता न चला तो उसने ईश्वर की कल्पना की। इस प्रकार मानव ने ईश्वर की काल्पनिक रचना कर डाली। जिस प्रश्न का उत्तर उसकी सीमित बुद्धि उसे न दे सकी उसे उसने प्रभु की माया कह कर टाल दिया। ऐसे

दशा में हम कह सकते हैं कि ईश्वर सम्बन्धी धारणा केवल अज्ञान पर आधारित है। जो बात जब तक हमारी समझ में नहीं आती तब तक हम उसे ईश्वर की माया कह देते हैं। जब यह हमारी समझ में आ जाये तो उससे आगे जो समझ में नहीं आता उसे ही माया कह देते हैं। इस लिये ईश्वर के उपासक केवल अज्ञानता (इग्नोरेंस) को पूजते हैं।

ईश्वर का निर्माण मानव ने किया है इस बात को हम दूसरे उदाहरण से बड़ी सुगमता से समझ सकते हैं। संसार में मानव की उपेक्षा अन्य प्राणियों की अत्यधिक है। क्या आप बता सकते हैं कि मगर-मच्छ की ईश्वर सम्बन्धी वही धारणा और परिभाषा है जो आप की है। एक बरसाती कीड़े की भी यही धारणा है ?" अजय कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु सब चुप थे। उसने बात को जारी रखते हुए कहा "यदि ईश्वर एक है तो कम से कम उसके सम्बन्ध में उसकी सृष्टि के सब प्राणियों की एक सी धारणा होनी चाहिए थी। खेद की बात है कि ऐसा नही है। इन संक्षिप्त सी बातों को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नही है और जब अस्तित्व ही नही है तो शक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। तब उसकी पूजा करना, स्तुति में समय का नाश करना अपने आपको धोखा देने के सिवाये कुछ अर्थ नहीं रखता। वह अपनी कमज़ोरियों और असफलताओं को छुपाने का सबसे सुगम साधन है। आप किसी कार्य में चाहें गलतियों और सीमाओं के कारण असफल हो जायें, मगर बड़े मजे से कह दीजिये···'ईश्वर की ऐसी मर्जी थी अथवा हमारे भाग्य में यही था···और छुट्टी। इतना कहकर अजय बैठ गया और पानी पीने लगा।

इन्दु के गुट में से एक और लड़का उठ कर बोला, "अजय नास्तिक है। बात यह है इस पर अभी कोई मुसीबत ही नहीं पड़ी। जब मुश्किल पड़ती है तब ईश्वर याद आता है। तभी तो कहते हैं कि दुख में तो सब भजे सुख में भजे न कोई। भाई साहब जब बुढ़ापा आयेगा या कोई

मुसीबत पड़ेगी तब आप ईश्वर के सबसे बड़े भक्त होंगे ।

अजय ऐसे छुछले तर्क पर खीझा अवश्य पर तो भी अपनी सहज गम्भीर मुद्रा में बोला, "मुझे भाई साहब की बात में कोई तर्क नहीं दिखाई देता । हाँ डराव जरूर है । तो मेरे भाई जब कोई मुसीबत पड़े तो मैं तसल्ली कर लूंगा कि सम्भवतः मुझे नास्तिकता का फल मिला है । मगर जब आप उसे आस्तिकता के पाप का फल समझेंगे । या आप का ख्याल है कि आप बुढ़ापे से बच जायेंगे अथवा दुनिया की अन्य सब व्याधियों से मुक्त रहेंगे । या मृत्यु से भी बच जायेंगे । तब तो मैं भी अवश्य आप के साथ हो जाऊँगा ।"

"इन बातों से कौन बच सकता है ।" वह लड़का बोला ।

अजय ने कहा "अरे भाई आप क्या बचेंगे । मैंने बड़े-बड़े मन्दिरों के पुजारियों को और भक्तों को देखा है । तपस्वियों और योगियों को देखा है जिन्होंने सारा जीवन उस परमात्मा को शुक्रगुजारी में लगा दिया । मगर वे भी न किसी व्याधि से बच सके और न ही प्राकृतिक प्रकोपों से । न बुढ़ापे से और न मृत्यु के चुंगल से । जब रात दिन उपासना करने वालों की यह दशा है तो यदि मेरी भी वैसी ही दशा रही तो उसमें हैरानी की कौन सी बात है । तब शून्य की प्राप्ति के लिए जीवन भर किस लिए भटकते रहें ।" अजय ने फिर कुछ रुक कर कहा "किसी को मुसीबत में देखकर उस पर ईश्वरीय प्रकोप को थोपना उस की मजबूरी का फायदा उठाना है । और ऐसा केवल नीच आदमी करते हैं । भले आदमियों को यह शोभा नहीं देता । यदि आप किसी नास्तिक को उसके किसी प्रिय की मृत्यु पर श्मशान भूमि में ईश्वरीय प्रकोप की बात समझाने का यत्न करें तो उससे बड़ी नीचता क्या होगी ।"

इन्दु ने जो कि अब तक चुपचाप सुन रही थी प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहा, क्या आप इसको नहीं मानते कि हर एक वस्तु का कोई न कोई बनाने वाला अवश्य होता है ?"

"मान लीजिये कि मैं मानता हूँ ।" अजय ने उत्तर दिया ।

"तो संसार का बनाने वाला भी कोई न कोई अवश्य होना चाहिए और वह ईश्वर ही हो सकता है।"

"तो देवी जी, आपके विचारानुसार उस ईश्वर का बनाने वाला कौन है ? हर चीज का बनाने वाला कोई न कोई अवश्य होना चाहिए अजय ने पूरे आत्मविश्वास से कहा।"

इन्दु निरुत्तर हो गई। उसके मुख से केवल इतनी बात निकली "आप तो बहुत आगे चले जाते हैं।"

"इसमें हर्ज क्या है।"

इन्दु को इतने में और याद आ गई। बोली "ईश्वर तो सर्वशक्तिमान है, वह जो चाहे कर सकता है।"

अजय ने कहा, "मेरी बात का जबाव नहीं मिला। मगर चलिये, उसे रहने दीजिये। आप अपने ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने के लिए क्या प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ?"

"प्रमाण लाखों हैं।" इन्दु ने निश्चित भाव से कहा। "यह आसमान, यह तारे, यह जमीन, यह नदी नाले, ये पहाड़, यह हरी-हरी घास ये वृक्ष आदि असंख्य वस्तुएं हैं जो उसने बनाई हैं। आदमी क्या कर सकता है। आप एक पौदा तक तो पैदा करके दिखायें। उसकी इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिलता।"

अजय बोला, अच्छा पौदे के उगाने की बात को ही ले लीजिए। ईश्वर पौदे को उगाने के लिये कितना समय लेता है ?"

"यही कोई एक दो महीना। जैसा-जैसा कोई पौदा हो वैसा ही उसके लिए समय लग जाता है।

"तो इतने ही समय में मैं भी पौदा पैदा कर सकता हूँ।"

"इन्दु कुछ विस्मित सी और अजय की बात में कुछ मूर्खता का मिश्रण अनुभव करती हुई आंतरिक रूप से हँसी। तब प्रश्नात्मक भाव से बोली, 'आप उगा सकते हैं।

"जी हाँ, मैं उगा सकता हूँ। आप को उगा कर दिखा सकता हूँ। मेरी बाटिका में आज चलिये। आपके सामने बीज डाल दूंगा। और फिर महीने बाद पौदा देख लेना।"

"इस तरह तो जमीन में उगना ही हुआ। इन्दु बोली।

"तो फिर ईश्वर ही किसी सूखे पत्थर पर उगा कर दिखा दे।"

इन्दु सोचने लगी कि इस बात में कुछ तथ्य है। परन्तु अधिक सोचने का समय यहाँ कहाँ था। उसने हैरान होकर पूछा "तब इन सब प्राणियों को कौन पैदा करता है ?"

"वही जो बरसातों में उन लाखों करोड़ों कीड़ों-मकोड़ों को पैदा कर देता है वह न बरसातों से पहले दिखाई देते हैं और न बरसातों के बाद ही। वही जो एक माँस के लोथड़े को पड़ा रहने पर उसमें कीड़े ही कीड़े पैदा कर देता है। वही जो गंदे तालाबों और जोहड़ों में मच्छरों की भरमार कर देता है। वही जो गंदी चारपाई में खटमलों को भर देता है। और वही जो गंदे शरीर में जूओं को डाल देता है।"

इन्दु का कौतूहल बढ़ रहा था। वह बोली, "आपका अभिप्राय किस से है।"

"वह वातावरण है। पौदे को न तो सूखे पत्थर पर मैं ही उगा सकता हूँ और न ही आपका भगवान। उसके लिये तो वातावरण विशेष की आवश्यकता है। जहाँ वह हुआ वहीं पौदा उत्पन्न होगा। आपने कहा था कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिलता। तब यदि आपके ईश्वर की इच्छा इतनी हीन है कि वह गंदे शरीर होने पर उसमें जूएं डाल दे। परनाले में गन्द भरने पर उसमें कीड़े-मकोड़े पैदा कर दे, या कोई वस्तु सड़ जाने पर उसमें कीटाणुओं को उत्पन्न कर दिया करे तो वह इच्छा अत्यन्त तुच्छ और घृणित है और गंदगी पर आधारित है। यानि जब कोई गंदा रहे तब ईश्वर इच्छा करता है कि उसके अन्दर जूं को जीवन दिया जाये और सम्भवतः आपके अनुसार उसमें आत्मा डाल दे। परन्तु वही प्राणी साफ-सुथरा रहे तो ईश्वर की

इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकती। इसलिये आप भी ईश्वर इच्छा की पूर्ति में योग देने के लिये गंदा रहना आरम्भ कर दें। वरना वह कहीं कुपित न हो जाये। उसकी इच्छा आत्मनिर्भर नहीं है। आपके सहयोग की उसे आवश्यकता है।"

इन्दु चुपचाप अजय का का मुँह ताकती रही। अजय ने आगे कहा, "क्या अब भी आपका कहना है कि उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं है?"

इन्दु बोली, "सर्वशक्तिमान तो वही होता है। उसकी शक्ति निस्सीम होनी चाहिये।"

अजय ने कहा, "पहले तो मैंने आपको उसकी इच्छा की सीमा, प्राणियों को उत्पन्न करने की सीमा बता दी। अब भी अगर वह सर्वशक्तिमान है तो आप कृपा करके यह बताइये कि यह सर्वशक्तिमान ईश्वर किसी ऐसे राक्षस को बना सकता है जो उसको खा जाये?"

इन्दु को कुछ सूझ नहीं रहा था। बोली, "आपका क्या मतलब है?"

"मतलब साधारण है। मेरे प्रश्न का उत्तर हां या न में दीजिये।"

इन्दु निरुत्तर बैठी देखती रही। हाँ कहे तो ईश्वर की शक्ति को राक्षस समाप्त कर देगा। न कहे तो सर्वशक्तिमान नहीं रहता। अजीब उलझन थी। वह सोचती रही। इतने में उसकी एक सहेली उठ कर बोली, "श्रीमन, मैं तो यह जानती हूँ कि जैसे कबीर आदि बड़े बड़े विचारकों और मनीषियों ने कहा है कि ईश्वर गूंगे का गुड़ है। उसको तर्क सिद्ध नहीं किया जा सकता। उसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है। गूंगे को गुड़ का स्वाद तो अवश्य मालूम होता है और उसका आनन्द भी लेता है मगर वह बता नहीं सकता कि उसे कैसा लगता है।"

अजय बोला "तब आपने तुलसीदास जी की बात को क्यों छोड़ दिया। वह कह गये हैं कि "हरिहर निन्दा सुने जो काना, पाप लगे

गोघात समाना।'ऐसी दशा में प्रोफैसर साहब से प्रार्थना कर दीजिये कि इस डिबेट को अविलम्ब बन्द कर दें। आप खामखाह अपने ऊपर पाप क्यों डाल रहे हैं। क्षणभर के लिये अजय चुप रहा और फिर विरोधी दल के विद्यार्थियों की ओर दृष्टिपात करता हुआ बोला, "ईश्वर की अनेकों परिभाषायें प्रस्तुत की जाती हैं। जैसे ईश्वर गूंगे का गुड़ है, दूध में पानी की तरह है अथवा गगन में आकाश की तरह है। कहीं सगुण है तो कहीं निर्गुण। कहीं वह कुन्देन्दु तुषार हार धवला, शुभ्रवस्त्रावृता, वीणावरदण्डमण्डितकरा, श्वेतपद्मासना है तो कहीं वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ है फिर कहीं यस्यांतम् न विदुः सुरासुरगणा है। यह बात वैसी है जैसे किसी ने कहा है कि साफ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं। आखिर कोई करे भी क्या। कोई चीज़ हो तो दिखा दी जाये, जब कुछ है ही नहीं तो फिर 'इस तरह' 'उस तरह' का ही सहारा लेना पड़ता है। यह तो वही बात है कि यदि किसी छोटे बच्चे को समझाना हो कि तरल किसे कहते हैं तो कह दिया जाये कि वह अमृत की तरह होता है या सुरसरी में जो पदार्थ बहता है वह तरल होता है। और यह नहीं कि उसके सामने एक बालटी पानी की उडेल दी जाये और बताया जाये कि इस प्रकार के पदार्थ तरल होते हैं जो ढलवान में नीचे को बह जाते हैं, क्योंकि वे अपना तल सीधा रखते हैं।

इसके अतिरिक्त जब कबीर जैसे महान मनीषी और भक्त उसका विवरण देने में असमर्थ रहे हैं, वे केवल यही बता गये कि इसे तर्क सिद्ध नहीं किया जा सकता अपितु गूंगे के गुड़ की तरह अनुभव किया जा सकता है, तब आप काहे को सिर खपा रहे हैं कि वह ऐसा है और वैसा है। जो कोई जब अनुभव करे तो लाभ उठाये और न करे तो इस में कहने की कुछ बात ही नहीं रह जाती है।"

इन्दु की सहेली आगे कुछ न कह सकी। अलबत्ता इतनी देर में इन्दु ने अपनी बुद्धि को और टटोल लिया था। वह बोली "मान लीजिये

हमआपकी इस बात को मान लेते हैं कि ईश्वर नहीं है। तब आप यह बताइये कि इस पृथ्वी के चारों ओर जो असंख्य तारे और ग्रह दिखाई देते हैं ये सब कैसे टिके हुए हैं। इन सबको कौन नियन्त्रित करता है ?"

अजय ने कहा "आप सम्भवतः यह समझते हैं कि मैं ही आपका सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। और आपको हर बात का उत्तर दे सकता हूँ। इस विषय पर एक भारी विज्ञान है। उसका आप अध्ययन कीजिये, आपके बहुत सारे संदेह दूर हो जायेंगे। यह आप सिद्ध नहीं कर सके कि ऐसा कोई ईश्वर हो सकता है जिसका सम्बन्ध प्राणियों से हो। अब आपने वही अज्ञानता का आधार पकड़ने की चेष्टा की है। अर्थात् जो हमारी समझ से परे है वह ईश्वरीय है। तब यदि यह मान भी लिया जाये कि इन अनेकों तारों और ग्रहों का निर्माता और नियन्ता कोई ईश्वर है तो वह होता फिरे। हमें उससे क्या। हम तो यह जान चुके हैं कि हममे सम्बन्धित ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। तारों और ग्रहों से सम्बन्धित ईश्वर की चिन्ता वे ग्रह स्वयं करें और उसके विषय में उन्हीं से आपका प्रश्न भी होना चाहिये। मैंने तो यह सिद्ध कर दिखाया है कि मानव अथवा अन्य सांसारिक प्राणियों से सम्बन्धित ईश्वर जैसा कोई वस्तु नहीं है। और यदि है तो उसका प्रबन्ध और नियन्त्रण ऐसा शोचनीय है जो कि हमारी श्रद्धा का पात्र कदापि नहीं हो सकता। सम्भवतः आप ऐसे प्रबन्धक की पूजा तो क्या करेंगे न उसे उलटे उसको बुरा भला कहेंगे।

एक और साधारण सा उदाहरण मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। यदि एक बालक को पैदा होने के पश्चात एक कमरे में रख छोड़े उसको खाना पीना देते रहें, बाकी ईश्वर के भरोसे पर छोड़ दें। तो आप देखेंगे कि वह बालक बड़ा होने पर भी एक निम्न श्रेणी के पशु से किंचितमात्र श्रेष्ठ न होगा। पशु कम से कम शारीरिक रूप से बलिष्ट होते हैं। सर्दी गर्मी को सहन कर सकते हैं। तेज दाँतों और

नाखूनों के बल पर कुछ खाने को प्राप्त कर सकते हैं। मगर ईश्वर का वह बालक तो निर्बल पशुमात्र रह जायेगा। दूसरी ओर यदि एक बालक अच्छे माता-पिता के हाथों अच्छी शिक्षा प्राप्त करेगा तो वह एक सफल नागरिक बनेगा। वह आत्मनिर्भर होगा और बुद्धिमान कहलाये गा। असलीयत तो यह है कि हम जो कुछ इस समाज में हैं वह ईश्वर के बनाये हुए नहीं बल्कि अपने समग्र वातावरण के प्रतिबिम्ब मात्र हैं।"

# कर्मफल सिद्धान्त

पहले ईश्वर पक्ष में विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। जब कुछ विद्यार्थी चुपचाप इन्दु के ग्रुप से खिसक कर अजय के ग्रुप में सम्मिलित हो रहे थे। ताकि बाद में जब सभा विसर्जित होगी वे भी गर्व से कह सकेंगे, 'यार हम तो जानते ही थे कि लड़कियाँ लड़कों से क्या बहस कर सकती है। परन्तु अभी भी इन्दु हिम्मत हारने वाली न थी। वह उठ कर बोली, 'जहां तक संसार की सब बुराइयों और कठिनाइयों का सम्बन्ध है उसके लिए ईश्वर अथवा भाग्य जिम्मेदार नहीं है। उसके लिए स्वयं हमारे कर्म उत्तरदाई हैं। हर कोई अपने जन्मजन्मान्तरों के कर्मों का फल भुगत रहा है।"

अजय की धारणायें स्पष्ट थीं। वह आत्मविश्वास के साथ बोला "बड़े खेद का विषय है कि आपकी सारे की सारी धारणायें मूलहीन हैं। यह कर्मफल सिद्धान्त ईश्वरवादियों का एक और सहारा है। ईश्वर रूपी जो पौदा है यह सचमुच बिना जड़ के आकाश बेल की तरह फैलता चला गया है और जिन झाड़ियों और वृक्षों के सिर पर यह फैल रही है वे आप जैसे महानुभाव हैं। आप इस बोझ को भार न समझ कर आभूषण समझ बैठे हैं। और इसकी धारण करने में सुन्दरता और शृंगार का आनन्द लेने लगे। परन्तु याद रहे कि इससे लाखों-करोड़ों इन्सानों को इन्सान का जीवन व्यतीत करना कठिन हो

गया । दासों की जिस प्रथा का वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ उसके लिए भी यह कर्मफल सिद्धान्त जिम्मेदार है । इससे राष्ट्र के राष्ट्र दासता की बेड़ियों में जकड़े रहे । बड़े-बड़े सम्प्रदाय और जातियां नष्ट-भ्रष्ट हो गईं । महान युद्धों और संघर्षों की ओर यातनायें भोगनी पड़ीं । इस ईश्वर रूपी सिद्धान्त की निजनिर्मित कारा से मुक्ति पाना प्रायः असम्भव जान पडता है ।

अच्छा अब आपके कर्मफल सिद्धान्त की शव-परीक्षा भी कर ली जाये । आप कृपया शुद्ध तथा सक्षिप्त रूप में बताइये कि कर्मफल की आप क्या परिभाषा करते हैं ?"

"साधारण शब्दों में कर्मफल से हमारा अभिप्राय यह है कि यदि कोई बुरा काम करता है तो उसे उसका बुरा और जो अच्छा काम करता है उसे उसका अच्छा फल मिलता है यह आवश्यक नहीं कि इसी जन्म के कर्मों का फल हो । हो सकता है कि पिछले जन्म के कर्मों का फल भी कोई भुगत रहा हो ।"

"तब तो आपका यह सिद्धान्त ठीक वैसा ही है जैसे जौ बोने वाला गेहूँ की फसल काटने की आशा रखता है ।"

"यह किस तरह ?" इन्दु ने पूछा ।

"सुनिये मैं बता रहा हूँ । यह मैं भी मानता हूँ कि कोई कर्म निष्फल नहीं जाता । परन्तु मैं जौ बोने पर जौ ही काटने की आशा रखता हूँ । जिस रूप में कर्मफल को मैं देखता हूँ वह यूँ है कि मान लीजिये मैं एक पुस्तक पढ़ता हूँ तो मैंने पढ़ने का कर्म किया उसका फल यह हुआ कि पुस्तक पढ़ ली गई । इसी प्रकार अजय ने बात के साथ ही साथ जोर से दोनों हाथों की ताली बजाई जिससे इस सदन की स्तब्धता और एकाग्रता को जुम्बश-सी दी गई । मैंने दोनों हाथों की ताली पीटने का कर्म किया और उसका फल यह हुआ कि ताली बज गई जिसकी आवाज आप ने सुनी । परन्तु आपकी कर्मफल की धारणा और ही है । आप समझते हैं कि जब हमने पढ़ा तो परीक्षा में सफल क्यों

नहीं हुए। अथवा सफल हुए तो नौकरी क्यों नहीं लगी। मगर यह कैसे हो सकता है। जो कर्म किया जायेगा फल तो आखिर उसी का मिलेगा। आपने लिखा तो उसका फल यह हुआ कि लिखा गया। न कि नावल प्राइज की प्राप्ति। आप ने भजन गाया। उसका यह फल हुआ कि भजन गाया न कि उससे ईश्वर मिल जायेगा। इसी प्रकार मानो आपने झूठ बोला, तो उसका फल यह हुआ कि आपकी जबान के हिलने से कुछ ध्वनियाँ निकलीं। उन ध्वनियों में झूठ मिथ्या भाषण है या सत्य इससे कर्म फल का कोई सम्बन्ध नहीं। झूठ बोलने से नर्क या सच बोलने से स्वर्ग भोगने का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसी प्रकार पुण्य कर्म से स्वर्ग अथवा पाप कर्म से नर्क की बात भी जौ बोकर गेहूँ काटने की इच्छा रखने के बराबर है। नेक और बद कर्मों में कौन वाँछनीय है और कौन अवाँछनीय, मैं अभी इस पर विचार नही कर रहा। मैंने तो ये बातें केवल कर्मफल सिद्धान्त के सम्बन्ध में कहीं हैं। मेरे विचार में आप इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानते हैं कि ईश्वर ने मानव को उत्पन्न कर दिया। उसके बाद उसने जैसे-जैसे कर्म किये वैसे-वैसे ही वह फल भोगता रहा। और यह चक्र यूँ ही चलता रहता है। ईश्वर या भाग्य उसके बाद बरी-उलजिम्मा हो गये ?"

इन्दु सिर हिला कर बोली, "जी, बिल्कुल हमारा ऐसा ही विश्वास है।"

"आप यह भी मानते होंगे कि यदि कोई अच्छा मूर्तिकलाविज्ञ होगा तो वह अच्छी मूर्ति बना सकेगा और यदि कोई अनजान होगा तो वह अच्छी मूर्ति नहीं बना सकेगा ?"

इन्दु बोली, "यह तो साधारण सा नियम है परन्तु इस बात का इस चर्चा से क्या सम्बन्ध है।"

"यह मैं आपको समझा दूंगा। मेरा अभिप्राय: यह है कि सर्वप्रथम तो आपके अनुसार ईश्वर ने मानव को बनाया, उसकी रचना करने के बाद उसने उसे उसके कर्मों पर छोड़ दिया। तो प्रथम मानव को

निर्मित करने वाला ईश्वर रूपी कलाकार एक निपुण कलाकार होना चाहिए ?"

"बिल्कुल निपुण" इन्दु बोली।

"तो उस निपुण कलाकार ने पहले अच्छे ही मानव निर्मित किये होंगे। उनको सद्विचार और सदव्यवहार प्रदान किये होंगे।"

"स्वाभाविक बात तो यही होनी चाहिये इन्दु बोली।

"और आगे की सृष्टि फिर उनसे फैली होगी।"

इन्दु बोली, "यही तो मेरा कहना है कि आगे जैसे-जैसे उन्होंने कर्म किये वैसे ही फलों का भुगतान वे करते रहे।"

तब संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या को आपने ध्यान में नहीं रखा होगा। यह तो आप सिद्ध न कर सकेंगे कि भगवान ने जब मानवों का निर्माण किया था तो उनकी संख्या भी उतनी ही थी जितनी कि आज के मानवों की है। जब ऐसी बात है तो संसार पहले चन्द इने गिने व्यक्तियों पर निर्भर होगा और धीरे धीरे उन्हीं से आगे फैला होगा। तब जो कर्म उन्होंने किये उसका फल केवल उन्हीं को भोगना चाहिये। शेष जो संसार उनसे नहीं फैला है वह उनके पाप-पुण्यों के लाभ-हानि को क्यों भुगतें।

इसके अतिरिक्त जब सब से पहले मानवों को निपुण कलाकार ईश्वर ने सद्विचार और सद्व्यवहार युक्त बनाया तो उनके सदकार्यों का उन्हें अच्छा ही फल मिलना चाहिये। जब ईश्वर ने उन्हें अच्छा बनाया था तो बुराई करनी उन्हें आती ही न थी। और जब उन्हें बुराई करनी नहीं आती थी तो उन्हें बुरे कर्मों के फल मिलने का सवाल ही नहीं उठ सकता। तब बुरे कर्मों का प्रारम्भ ही नहीं हो सकता। और यदि ईश्वर निपुण कलाकार नहीं था अथवा उसने जानबूझ कर मानव का निर्माण करके उसे दूर्भावनायुक्त बनाया तो उसके लिये भी वही ईश्वर उत्तरदाई है। बिचारे मानव का उसमें क्या दोष है।

इतना सुन कर इंदु बोली "आपने तो दण्ड-विधान के सब अपराधों

के लिये ईश्वर-ही को जिम्मेदार ठहरा दिया है।"

"मैंने कुछ नहीं किया। जो कुछ है वही आपके सम्मुख रखने का यत्न किया है। आप फिर ईश्वर को जिम्मेदार या गैर-जिम्मेदार तो आप ही ठहरा सकते हैं जो उसके अस्तित्व को मानते हैं। मैं जिसके अस्तित्व ही से इन्कार करता हूँ उसका ठहराने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।"

इन्दु अजय की अकाट्य युक्तियों और तर्क से अत्यन्त प्रभावित हुई। ऐसी प्रतिभा वाला, ऐसा स्पष्टवादी, ऐसा निर्भीकभाषी व्यक्ति आज तक उसने कोई न देखा था। वह मन ही मन उसकी प्रशंसा करती रही और उस पर मुग्ध हो गई। उसने अब डिबेट को जारी रखना व्यर्थ समझा और प्रोफैसर साहब के कुछ कहने से पूर्व ही उठ कर कहा "सभापति महोदय, हम निरुत्तर हैं और अपने ग्रुप की हार मानते हैं। मैं मिस्टर अजय को इस विजय पर बधाई देती हूँ। वह सचमुच अजय है।"

अजय को विजय घोषित कर दिया गया। वह अकेला सब के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देता रहा था। उसका गला सूख गया था। प्रोफैसर साहब ने उसको पुरस्कार स्वरूप 'समाज विज्ञान' पर एक पुस्तक दी। उसके पश्चात् डिबेट-सभा विसर्जित हो गई। सब विद्यार्थी वे चाहे उसके ग्रुप के थे अथवा विरोधी ग्रुप के, मुक्त कण्ठ से अजय की प्रतिभा की प्रशंसा करते जाते थे और उसे साधुवाद दे रहे थे।

सब विद्यार्थी बिखरने लगे। इन्दु भी अपने घर की ओर चल पड़ी। मगर आज की डिबेट उसके जीवन में एक महान घटना थी। वह सोचती रही, "न ईश्वर है, न भाग्य है और न ही कर्मफल। तब मैं इस स्थिति में क्यों हूँ। मेरी माँ रात दिन क्यों मशीन की तरह कार्य करती रहती है। इतना परिश्रम करने पर भी केवल दो समय का खाना हासिल करना क्यों दुर्लभ सा जान पड़ता है। आखिर इसको कौन बाधित करता है। यह सारी दुनियाँ का अपना-अपना रंग ढंग क्यों

है। कोई कुछ करता है और कोई कुछ, यह क्यों। कौन ठीक करता है और कोई गलत। उसका निर्णय कौन करता है। जीवन का ध्येय क्या है अब इन्दु को यह जानने की तीव्र इच्छा होने लगी। उसे याद आया सचमुच पक्षी के जीवन का ध्येय मालूम करने से पूर्व मुझे अपने जीवन के ध्येय को जानना चाहिये। क्या हो सकता है उस जीवन का ध्येय। ईश्वर से लगन नहीं जब ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं तब शून्य के लिये जीवन पर्यन्त यत्न करते रहना निरी मूर्खता नहीं तो और क्या। इन्दु को सब कुछ एक गोरख धंधा सा मालूम होने लगा। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह घर पहुँच गई। अनमनी सी घर के सब आवश्यक धंधों से निवृत्त हो गई। लेट गई और कुछ ही देर में उसे नींद आ गई।

# एक और चाल

सड़क के एक मोड़ पर एक तरफ बैठे दो व्यक्ति बातें कर रहे थे। इनमें से एक निश्चिन्त पुरानी दरी के टुकड़े पर चौकड़ी मार कर बैठा हुआ था। और दूसरा अपने पैरों पर उकड़ मारकर बैठा था। पास में एक टिन के टुकड़े पर हाथ और उसकी रेखाओं का चित्र बना हुआ बोर्ड था जो जंगले के खम्बे के सहारे टिकाया गया था। नीचे एक थैली थी जिसके अन्दर कुछ चीजें रखी मालूम होती थीं और बाहर से यह थैली मैल की असंख्य परतों से खूब चमक रही थी। वैसे तो जगह अकेली थी परन्तु सड़क पर होने के कारण इधर से काफी लोग आते-जाते थे। यहाँ था एक ज्योतिषी का अड्डा जिसने सैकड़ों लोगों को उनके भविष्य के सब्ज़ बाग दिखाकर वर्तमान की कठिनाइयों को भुला देने में काफ़ी सहायता प्रदान की थी और इन्ही सब्ज़ बागों को दिखाकर उनसे कुछ पैसा बटोर कर स्वयं भी आने वाले उज्जवल भविष्य के सब्ज़ बाग देखा करता था। ज्योतिषी जी का जैसे कद लम्बा था वैसे ही सर और दाढ़ी के बाल भी लम्बे-लम्बे थे। इसके सामने जो महानुभाव उकड़ू मारकर बैठे थे वह थे हमारे चिर परिचित श्री गोविद जी। बातचीत से ऐसा प्रतीत होता था कि इन दोनों व्यक्तियों का परिचय काफी पुराना है। हो सकता है कि ये हमनिवाला-हमप्याला दोस्त हों।

गोविद ने उकड़ू मारते ही कहा था "सुनाओ भाई अभी तक कितना कुछ हाथ मारा है ?"

ज्योतिषी ने कुछ निराशा भरे में उत्तर दिया था, "सुबह से केवल पाँच आने कमाये हैं।"

"तो रात तक पीने का प्रबन्ध कर लोगे।"

"बाबू साहब सरदी तो बहुत बढ़ रही है, लेकिन यहाँ अपने काम में भी सरदी बढ़ गई है। आज तो चाय के प्याले पर ही गुजर करनी होगी।"

"अरे मियाँ घबराते क्यों हो। शकर खोरे को शकर और मुफ्तखोरे को टक्कर" गोविंद ने पाँच रुपये का नोट ज्योतिषी जी के हाथ में रखते हुए कहा "मिल जाती है।" गोविंद ने उसका हाथ अपने हाथों से थामे रखा और ऐसा प्रतीत होता था कि ज्योतिषी जी का हाथ वही देख रहा हो। ज्योतिषी जी के दाढ़ी से ढके चेहरे पर अजीब मुस्कान फैल रही थी। "एक छोटा-सा काम है।"

ज्योतिषी जी झटपट नोट को सम्भालते हुए उसी मुस्कान में सने हुए चेहरे से बोले "जनाब आपके किसी काम को इन्कार किया है? फिर बड़ा क्या और छोटा क्या।"

"सो तो मैं आपसे ऐसी ही उम्मीद रखता था।"

इसके बाद गोविंद ने उसको इन्दु और उसकी माँ का पूरा-पूरा परिचय दिया और उनको जो भविष्यवाणी करनी थी वह भी भली प्रकार समझा दी ज्योतिषी ने कुछ बातों को अच्छी तरह समझ कर कहा "अब आप निश्चिन्त रहें। बाकी काम मुझ पर छोड़ दें।" तब ज्योतिषी जी ने अपनी पोटली बन्द की, टिन का फट्टा बगल में दबाकर एक हाथ में थैली उठा ली और वहाँ से सीधे अपने मकान को चल दिये। गोविंद उसको चलता देखकर मन-ही-मन खुशी से झूमता हुआ अपने रास्ते हो लिया।

ज्योतिषी जी ने अपने डेरे में आकर अपना मैला कुरता उतार फेंका। तीन टाँकियों वाली काली पतलून भी खोल दी। एक गेरुए रंग की मैली-सी धोती डाल कर, बाकी शरीर पर राख मल दी। एक हाथ

में लम्बी-सी बाँस की डाँग और दूसरे में रस्सी के टुकड़े से लटकता हुआ पीतल का लोटा उठा लिया। सिर के बालों का जूड़ा-सा बनाकर उस पर भी राख और मिट्टी का छिड़काव कर दिया। मस्तिष्क पर कुछ लकीरें-सी खींच लीं और दाढ़ी खुली थी। इस प्रकार तैयार होकर वह इन्दु के घर की ओर रवाना हुए और कुछ ही समय बाद वहाँ पहुँच गये। इन्दु कालिज को जा चुकी थी।

वैसे सारा ही भारतीय नारी-समाज साधु-सन्तों का आदर-सत्कार करने में बड़ी सावधानी और तत्परता से कार्य करता है और इसी में जन्म जन्मान्तरों के पुण्य-फलों की प्राप्ति समझता है। किन्तु इन्दु की माँ उनमें भी विशेष स्थान रखती थी।

ज्योतिषी जी ने जब द्वार पर अलख जगाई तो झटपट सम्मुख उपस्थित हुई। वह सरल थी और दुखिया भी। सोचा क्या जाने कहीं सत्यनारायण जी ही परीक्षा लेने आ गये हों। यदि जरा-सी भी भूल हुई तो साधू बनिये की तरह सारी धन-सम्पत्ति पल-भर में भोज पत्रों में परिवर्तित हो जाये।

इसी विचार से उसने आते ही कहा "विराजिये महाराज।" इतना कह कर उन्हें चारपाई पर बैठने को इशारा किया। ज्योतिषी जी बोले, 'हम भूमि पर आसन लगाते हैं।" इतना बोलते ही वह एक ओर मशीन से थोड़ा हटकर भूमि पर बैठ गये।

इन्दु की माँ ने अत्यन्त विनम्र भाव से प्रार्थना की, "महात्मा जी मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

इस संसार में हम विचित्र बातें देखते हैं। यह महात्मा जी उम्र में इन्दु की माँ से सम्भवतः बीस-पच्चीस वर्ष कम होंगे। मगर निःसंकोच बोले, "बच्चा! तुम्हारा कल्याण हो। साधुओं को आदर के सिवा और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती।" महात्मा जी जरा देर रुक कर फिर बोले, "तुम्हारे मस्तिष्क से प्रतीत होता है कि तुम बड़ी ही तेजस्वी नारी हो। और तुम्हारी सन्तान तुमसे भी बढ़कर है। यदि

मेरा अनुमान अशुद्ध न हो तो तुम्हारी केवल एकमात्र लड़की है।"

इन्दु की माँ जैसी सरल हृदय नारी के लिये इतना क्या कम चमत्कार था। एक सर्वथा नवीन तथा संसार विमुक्त व्यक्ति इसके घर की बातें कैसे जान सकता है? उसका कौतूहल बढ़ गया। बोली, "महात्मा जी आप यह कैसे जानते हैं कि मेरी केवल एक लड़की है?"

"तुम्हारे मस्तिष्क की रेखा स्पष्ट दिखा रही है।"

"तो आप कृपा करके मेरे हाथ को देखिये।" उसने निःसंकोच अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा। महात्मा जी ने हाथ थाम लिया और बड़ी गम्भीर मुद्रा से उसे देखने लगे। कभी उनकी भृकुटी में बल पड़ते और कभी स्पष्ट हो जाते थे। कभी उनके होंठ सिकुड़ जाते थे तो कभी स्वाभाविक अवस्था में आ जाते थे। यहाँ तक कि कभी उसका दूसरा हाथ ऊपर को उठता और कभी नीचे उतरता रहा। कुछ देर तक ऐसा ही चलता रहा। फिर एकाएक प्रसन्नमुख हो बोले, "भूत को छोड़ो—आपका भविष्य बड़ा ही उज्जवल है। थोड़े ही दिनों में आपको कोई शुभ समाचार मिलने वाला है।"

"कैसा समाचार महाराज?" इन्दु की माँ जवाब के लिये बेताब होने लगी।

"आपकी पुत्री बड़ी शिक्षित मालूम होती है।"

"आप ठीक कह रहे हैं।"

"वह इस समय विवाह योग्य अवस्था को प्राप्त हो चुकी है।"

"यह भी सही है महाराज।"

"यदि मेरी ये बातें ठीक हैं तो जो बात मैं आपको अब बता रहा हूँ वह कदापि गलत नहीं हो सकती।"

"आपकी कोई भी बात गलत नहीं हो सकती महाराज" इन्दु की माँ प्रायः गद्‌गद् तथा सन्देहपूर्ण भाव से बोली।

"तो सुनो" महात्मा जी ने वाक्यों पर ज़ोर डालते हुए कहा, तुम्हारी बेटी के लिये शीघ्र ही एक ऊँचे घराने से स्वयं रिश्ता आने

वाला है।"

एक निर्धन विधवा के लिये इससे शुभ समाचार क्या हो सकता है कि जिसे ढूँढ़ने पर भी अपनी कन्या के लिये वर प्राप्त करने की आशा नहीं हो सकती, तब स्वयं एक ऊँचे घराने से उसको रिश्ता प्राप्त होगा यह सुखद समाचार कितना आनन्ददायी था इसका अनुमान इस समय केवल इन्दु की माँ ही लगा सकती थी। वह दोनों हाथ जोड़कर रोली, 'आप धन्य हैं महाराज।"

"परन्तु" महात्मा जी इतना कहकर रुक गये और अपना सिर कुछ हल्का-हल्का हिलाने लगे।

"परन्तु क्या ?" इन्दु की माँ ने कुछ हैरानी और भय के साथ पूछा।

"वह रिश्ता केवल एक बार आयेगा। केवल एक बार" महात्मा जी ने कुछ जोर देकर कहा। "यदि अवसर चूक गया तो हाथ न आयेगा। और फिर तुम्हारी लड़की का जीवन सुखी न रह सकेगा।"

इन्दु की माँ का भय दूर हुआ—वह कुछ धीरज के साथ बोली, "मैं अवसर को हाथ से जाने न दूँगी।"

"यह सोच लेना। अच्छा मैं जाता हूँ। नमो नारायण !" महात्मा जी उठ खड़े हुए।

इन्दु की माँ ने आड़े समय के लिये रखा हुआ सवा रुपया उनके चरणों पर धर दिया और विनयपूर्वक बोली, "इसे स्वीकार करें महाराज !"

"ज्योतिषीजी ने सवा रुपया हाथ में उठा लिया। उनका दिल तो नहीं चाहता था, मगर कुछ मजबूरी-सी जान पड़ी कि उन्होंने उसको फिर नीचे रख दिया। उनके मन में आया कि हाथ में आया हुआ सवा रुपया—उससे उन्हें हाथ धोना पड़ रहा है। कभी सारे दिन भर धूप या जाड़े में बैठकर भी उन्हें प्राप्त नहीं होता। मगर वह मन मसोस कर बोले, देवी मैं माया को अपने पास नहीं रखता। यह तुम्हारे आदर

स्वरूप मुझे मिल गया समझो। हाँ केवल एक गिलास पानी पी लूंगा।"

इंदु की माँ ने अहोभाग्य कहा। वह दौड़ती-दौड़ती पानी ले आई और महात्मा जी को पीने को दे दिया और स्वयं ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद करने लगी कि ऐसे महात्मा यहाँ से बिल्कुल खाली नहीं गये। स्वीकार तो किया चाहे पानी ही सही। पानी पीकर साधु तो चला गया; मगर इंदु की माँ मन ही मन उसकी प्रशंसा करती रही कि इस घोर कलियुग में भी ऐसे ज्ञानीमानी महात्मा संसार का कल्याण करने के लिये इस पाप की धरती पर विचरते रहते हैं।

# जीवन का लक्ष्य

इन्दु के मन में दुविधा थी। वह जीवन का ध्येय क्या है यह जानने के लिये उत्सुक हो उठी थी। उसने बहुत सारी पुस्तकों को देखा परन्तु कहीं से भी उसकी सन्तुष्टी न हुई। अपने मन को भी टटोला, वहाँ भी उसको कुछ न मिला। अब इस प्रश्न का उत्तर कौन दे सकेगा यह निर्णय करने में उसे देर नहीं लगी। उसे मालूम था कि उसके परिचित संसार में केवल अजय ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी धारणायें स्पष्ट, परिपक्व तथा स्वतन्त्र हैं। "उसने एक बार मुझे पूछा भी था, परन्तु उस समय मैंने इस ओर लापरवाही दिखाई।" इन्दु अजय को याद करके खुश हुई। उसे इस बात की प्रसन्नता हो रही थी कि अजय जैसा प्रभावशाली व्यक्ति उसका सहपाठी और प्रिय मित्र है। "यदि मैं उसे चाहती हूँ तो वह भी मुझे प्यार करता है।" इतना सोचते ही इन्दु का रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह खुशी से झूमने लगी। उसके हृदय में शृंगार रस का स्रोत फूट पड़ा और वह जी भर कर उसका काल्पनिक आस्वादन करने लगी। विचारों का बवंडर उसके मस्तिष्क में आता और जाता रहा परन्तु इस मधुर स्मृति में अन्य सभी विचार उर्मियाँ टकरा-टकरा कर गिर पड़ी। तब उसके मन में अजय से मुलाकात और बातचीत के सभी अवसर एक के बाद एक आने लगे। फिर वही दृश्य आँखों के सामने आ गया—आकाश में पक्षी का विचरना, अजय का उससे सवाल करना—जीवन के लक्ष्य सम्बन्धी बातचीत।

वह अपने आप से बोली, "ठीक है, मैं उनसे फिर भेंट करूँगी। पूछूंगी मानव जीवन का क्या ध्येय है ?"

अगले दिन जब कालज से छुट्टी हुई तो इ दु बातचीत करती हुई अपने प्रिय मित्र के साथ उसके घर को चल दी। वे दोनों उसी कमरे में जाकर खाने की मेज के सामने बैठ गये। "राधे श्याम, राधे श्याम" बोलता हुआ सीता राम खाने-पीने का सामान लाता हुआ कमरे में दाखिल हुआ। खाद्य सामग्री मेज पर रखी। चाय बनाकर इन दोनों को दी। चाय का एक घूंट पीने के पश्चात् अजय बोला, "सीताराम इन्दु पूछती है कि तुम्हारे ईश्वर के क्या लक्षण हैं ?"

यह प्रश्न सीताराम को बुरा नहीं लगा। अब सीताराम कोरा गाँव का आदमी नहीं रह गया था। बेशक शुरू-शुरू गाँव की विचार-धारायें और कल्पनायें उसके मस्तिष्क में घूमा करती थीं परन्तु अब वह नगर का रहने वाला था। अजय के साथ कई स्थानों पर घूमने-फिरने से उसका दृष्टिकोण विस्तृत होने लगा था। वह मंदिर जाने लगा था, वहाँ जाने पर उसे अनुभव हुआ कि उसकी जो अब तक की ईश्वर-कल्पना थी वह उपयुक्त नहीं थी। इस मंदिर में जिस ईश्वर की स्तुति होती है वही सच्चा ईश्वर है। तभी तो इतने लोग यहाँ जाते हैं। तभी तो वहाँ के इतने विद्वान पुजारी जी उसकी पूजा करते रहते हैं। सीताराम इन बातों से प्रभावित था बोला, "उनका मुख बड़ा सुन्दर है। उनका सूट पीला है। उनके हाथ में बाँसुरी है। उनके सिर पर मुकुट और उनकी सौ-सौ सखियाँ हैं।"

"सखा कोई नहीं ?" अजय ने पूछा।

इन्दु मंद मंद मुस्काई।

"वह मुझे मालूम नहीं।" इतना कहकर सीताराम मुस्कराता हुआ चला गया। देखिये उसके आगे के अनुभव क्या बताते हैं।

इन्दु ने प्लेट से बर्फी का एक टुकड़ा उठाते हुए कहा, "मिस्टर अजय, सम्भवतः आपको मालूम नहीं कि मैं आज आपके साथ किस

विशेष प्रयोजन से आई हूँ।"

"मेरे घर में प्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन आपका सदा स्वागत है। और फिर अपने क्लास-फैलो के यहाँ आ जाने के लिये विशेषता की आवश्यकता भी क्या है।"

इन्दु ने चाय का प्याला और प्लेट मेज पर रख दी और जरा गम्भीर होकर बोली, "अजय, मेरे मन में एक बेचैनी सी उत्पन्न हो गई है। मुझे यह सारा संसार एक उलझा हुआ जाल दिखाई देता है। और उस दिन की डिबेट के फलस्वरूप वह उलझनें और भी टेढ़ी-मेढ़ी होती चली गई हैं। मैं मानसिक रूप से सचमुच तुम्हारी दासी हो गई हूँ। इस अन्धकार में केवल तुम्हीं रास्ता दिखा सकते हो ऐसा मुझे विश्वास है। जिस बात को मैं एक दिन केवल एक मामूली सी बात समझ कर टाल गई थी वह मेरे जीवन के लिये मुख्य प्रश्न का रूप धारण कर रही है।"

इन्दु निज सद्भावावेश में क्या कुछ कह गई उसे कहने के पश्चात् स्वयं ही अपने ऊपर आश्चर्य करने लगी थी और आँखें फर्श पर लगाये निश्चल बैठी रही।

अजय ने पूछा, "कहिये आप मुझको किस योग्य समझते हैं?"

"मैं यह जानना चाहती हूँ कि जीवन का ध्येय क्या है?" इन्दु ने अजय पर सामान्य दृष्टि डालते हुए कहा।

प्रश्न ऐसा था जिस पर अजय स्वयं बहुत खोज करता रहा था। उसने उस पर पर्याप्त अध्ययन और मनन किया था। इसलिये उसके लिये यह प्रश्न नया न था। हजारों बार उसके मन में यह प्रश्न उठा था और हजारों उत्तर भी उसने उसके लिये खोजे थे। परन्तु अन्तिम रूप से परिपूर्ण उत्तर अभी तक उसे प्राप्त न हो सका था। फिर भी जिस उत्तर पर उसे विश्वास और आस्था होती जा रही थी उसने उसी को इन्दु के सन्मुख भी प्रस्तुत कर दिया—बोला, "यदि आप इस प्रश्न को किसी अन्य प्राणी से पूछें तो आपको सम्भवतः शुद्ध उत्तर

प्राप्त हो सकेगा। उदाहरणतः यदि उसी पक्षी से आप फिर पूछें कि उसके जीवन का ध्येय क्या है, तो जो उत्तर आप उससे आशा रखते हैं वही मेरे विचार में आपके लिये भी बहुत हद तक ठीक हो सकता है।"

चाय खत्म हो चुकी थी। इन्दु बोली, "मिस्टर अजय, आपकी पहेलियाँ मुझसे नहीं बूझी जातीं। मैं स्पष्ट रूप से आपसे अपनी हार मान चुकी हूँ। कृपया साफ-साफ बताइये।" इन्दु कुछ गिड़गिड़ायी।

"जीवित रहना ही जीवन का ध्येय है। जो एक बार प्राण प्राप्त कर गया उसके बाद उन प्राणों की रक्षा करना ही उसका मुख्य लक्ष्य बन जाता है। इसलिये आत्म-रक्षा ही प्राकृतिक रूप से जीवन का लक्ष्य बन जाता है। और जीवन पर्यन्त 'निर्विघ्न-निर्वाह' इस लक्ष्य की पूर्ति है। इसके अतिरिक्त जो भी जीवन के ध्येय बनाये गये हैं वे कृत्रिम हैं और वे जाति, वर्ग अथवा देश आदि के साथ भिन्न-भिन्न होते चले गये हैं। उदाहरणार्थ आस्तिक के लिये ईश्वर से लौ लगाना ही जीवन का सबसे अन्तिम ध्येय बताया गया है। कहीं मुक्ति तो कहीं परम आनन्द की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय है। विभिन्न राजनैतिक दलों के जीवन के ध्येय भी विभिन्न हैं। कलाकारों के लिये उनकी कलाओं की साधना और उसमें पूर्णता प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है। परन्तु जो परिभाषा मैंने प्रस्तुत की है वह सब प्राणियों के लिए समान रूप से लागू होती है। प्राणी जीता क्यों है ? क्योंकि वह बना जीने के लिये है। जब वह जीने के लिए बना है तो उसे जीना ही पड़ता है और जब उसे जीना है तो उसके लिए आवश्यक साधनों का होना जरूरी है। उन्हीं साधनों की प्राप्ति यदि उसे निर्विघ्न रूप से होती रहे तो उसका निर्वाह सुगमता से हो जायेगा और जब उसका निर्वाह सुगमता से हो जायेगा तो उसके लक्ष्य की प्राप्ति हो गई। यह ऐसी परिभाषा है जो सब वर्गों, जातियों अथवा देशों के मनुष्यों यहाँ तक कि अन्य प्राणियों पर भी समान रूप से लागू होती है।"

इन्दु बोली, "मुझे ऐसा लगता है कि आपने यह जो परिभाषा प्रस्तुत की है यह जीवन का लक्ष्य ऐसा बताती है जो कि अत्यन्त निम्न श्रेणी का है। केवल निर्वाह, यह तो पशुओं का जीवन ध्येय हो सकता है। तब यदि यही उचित था तो हमारे बड़े-बड़े मनीषी तथा विचारक चाहे धार्मिक श्रेणी के हैं अथवा सामाजिक श्रेणी के, वे जिस पथ पर चले या चलने को कह गये क्या वे सब गलत हैं। क्या हमें उनका अनुसरण नहीं करना चाहिये ?"

"मैं कब कहता हूँ कि उनका अनुसरण नहीं करना चाहिये। परन्तु उसी सीमा तक जहाँ वे आपके निर्विघ्न निर्वाह में सहायक हों। उससे आगे निकलना आपके लिए घातक सिद्ध हो सकता है और वह मोह है, लालच है। मान लीजिए आप किसी ऐसे धार्मिक नेता का अनुसरण करना चाहते हैं जो त्यागी भी है और ज्ञानी भी। अब आप सोचें कि आपको यह कैसे मालूम हुआ कि वह महानुभाव त्यागी और ज्ञानी है। उसका केवल यही कारण है कि उस व्यक्ति ने निर्विघ्न निर्वाह से आगे की चेष्टा की। उसने संसार के बहुत से साधारण मानवों को इस भ्रम में डालने में सफलता प्राप्त की कि वह त्यागी और ज्ञानी है। आपके मन में यह बात बिठा देना कि वह त्यागी और ज्ञानी है यह सिद्ध करता है कि उसे मोह हो गया। जो लोग केवल जीवन के प्राकृतिक ध्येय की प्राप्ति पर ही संतुष्ट रह कर जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें कौन जानता है। वे बिचारे तो अनगिनत हैं, और उन्हें मोह नहीं होता है।

राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी हम इस बात को परख सकते हैं। यदि कोई देश राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से सब लोगों में सम्पूर्ण समानता लाने में सफल हो जाता है तो वहां एक और लालसा करने लग जाती है। और वह है विशेषता डिस्टिंक्शन प्राप्ति की। जो लोग केवल निर्विघ्न निर्वाह के लिए प्रयत्नशील हैं। और उसी की इच्छा भी रखते हैं उन्हें विशेषता प्राप्ति की परवाह नहीं होती।

मिस इन्दु अजय ने एक टक उसके मुख पर दृष्टि डालते हुए कहा, अब तो वह समय आ गया है कि सब लोगों को अपने सब प्रयत्न केवल इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए लगा देने होंगे। क्योंकि समाज का इतना भारी विस्तार हो गया है कि जब विशेषता प्राप्ति की मोहमई लालसा की पूर्ति भी कठिन है। जहाँ धन संचय से जनता का शोषण होता है वहाँ विशेषता प्राप्ति से मोह उत्पन्न होता है और ये हर दो लालसे हैं मोह में फंसकर असली ध्येय से बिलकुल भटक जाते हैं और फिर आगे भूलते ही भूलते चले जाते हैं फिर इस भूल भलैया में इतने आगे निकल जाते हैं कि पीछे की सुधबुध तक नहीं रहती। सच तो यह है कि आज का मानव इस भूलभलैया में ही फंस गया है। उसके जीवन के असली ध्येय को छोड़ कर हज़ारों लाखों कृत्रिम ध्येय बना डाले हैं और उनकी प्राप्ति के लिए उसे जो कुछ करना पड़े अन्धाधुंध करता चला जाता है। रहा सवाल यह कि यह ध्येय निम्न श्रेणी का है अथवा उच्च श्रेणी का। यह प्रश्न बहुत सी अन्य बातों से सम्बन्धित है। कौन निम्न है और कौन उच्च है इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। मेरे विचार में यह केवल धारणा और सम्पत्ति पर आधारित है। आप जिस चीज को निम्न कहते हैं और जिसको उच्च माने वह उच्च है। यह तो मान्यता तक की बात है। मूल रूप से न कोई चीज निम्न है और न उच्च। जहाँ तक प्राण रक्षा का सम्बन्ध है उस दृष्टि से क्या अन्य प्राणी, वे सब एक से हैं।

इसलिये, मिस इन्दु, इन सब बातों को दृष्टिगोचर रखते हुए मैं समझता हूँ कि जीवन का न तो कोई नैतिक लक्ष्य है और न ही भौतिक बल्कि जीवन एक जीविक आवश्यकता है तथा जीवित रहना ही जीवन का लक्ष्य है और जीवन पर्यन्त निर्विघ्न निर्वाह उस लक्ष्य की पूर्ति है।

इन्दु सब बातें बड़े ध्यान से सुनती रही और मन ही मन अपने ज्ञानी मित्र को शत-शत साधुवाद देती रही। वह बोली, "मेरी शंकाओं का समाधान हो गया। इसके लिए आपका धन्यवाद। आप से इस

प्रकार की लम्बी-लम्बी चर्चायें कदाचित आगे न हो सकेंगी।

अजय भौचक्का सा होकर बोला, "क्यों मुझ से कोई भूल हुई है क्या ?"

"नहीं-नहीं। आप क्या कोई भूल कर सकते हैं। आप तो अंधेरी राहों के ज्योति-स्तम्भ हैं। आप दूसरों को मार्ग दिखाते हैं स्वयं कभी क्या भूल करेंगे। मेरा अभिप्राय केवल यह था। कि जब परीक्षा के दिन समीप आ गये हैं। इसी कारण मैंने आप से इस विषय पर पहले ही चर्चा करके अपनी शंकाओं का समाधान करवाना उचित समझा था।

अजय ने कहा, "आपके साथ चर्चा करने पर मेरी अपनी धारणाएं जो पहले कुछ अस्पष्ट सी होती हैं वे स्पष्ट होने लगती हैं। मेरी जो कुछ जानकारी है। उसकी पुष्टी का श्रेय आपको है। इसलिए मैं आप का अधिक आभारी हूँ।" तब अजय ने अपना दाँया हाथ मेज पर हलके से सीधा रखते हुए कहा, "मिस इन्दु सच तो यह कि तुम धीरे-धीरे मेरे जीवन में प्रवेश कर रही हो।"

इन्दु की स्वयं यही दशा थी। पर वह यही बात जबान पर न ला सकी। इतनी बातचीत होने पर इन्दु ने बिदा माँगी। अजय कुछ दूर तक साथ गया और तब वे दोनों बिछड़ गये।

# मछली फँस गयी

जहाँ हिन्दु समाज में पले हुए लड़के-लडकियाँ अपने विवाह संबंधी बातचीत के बारे में अपने बड़ों के सामने शरमाते और हिचकिचाते हैं वहाँ बड़े भा उनसे साफ-साफ बात करने मे कुछ झिझक से काम लेते गये हैं। इन्दु का घर भी इस सामान्य नियम का उपवाद न था। उसकी माँ ने ज्योतिषी वाली बात इन्दु को सुनाई तक नही। क्योकि वह जानती थी कि यह लड़की ऐसी भविष्यवाणी पर कम विश्वास रखती है और साथ ही उसने यह भी सोचा कि उसको बताने का लाभ भी क्या है।

एक दिन ऐसा आ पहुँचा कि वही बातें बनाने वाली औरत जो एक बार गोविंद के घर पर उसकी परिचित हो गई थी, घर पर पहुँच गई। इन्दु घर पर नहीं थी। उस औरत ने इन्दु की माँ को बताया कि वह गोविंद की ओर से विवाह का सन्देश लाई है। गोविंद इन्दु से विवाह करेगा यह बात बताते हुए उसने उसके घर-बार और दूसरी सभी बातों को बढ़ा-चढ़ाकर बुढ़िया के सम्मुख प्रस्तुत किया। अन्त में बोली, "माँ जी, सोच लो, तुम्हारी लड़की जितनी पढ़ी हुई है ऐसा ही पति भी उसे मिल रहा है। अफसर की बीवी बन जायेगी। और अभी गोविंद की उम्र ही क्या है। इस उम्र में चार सौ रुपया ले रहा है, आठ-दस सालों में हजार पायेगा।"

बुढ़िया सब बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। चार सौ और हजार

रुपये का नाम सुनकर तो वह कुछ हक्की-बक्की-सी हो गई। उसे ख्याल आया कि मेरे पति इतनी अवधि तक नौकरी करते रहे परन्तु सौ रुपया नहीं बचा सके। इन्दु के होने वाले पति को एक हजार रुपया मासिक मिलेगा। खूब खायें-पहनें तो डेढ़ सौ खर्च कर देंगे। मौज उड़ायेंगे तो भी दो सौ बहुत होते हैं। आठ सौ महीने का बचायेगी। बुढ़िया आ-चर्य करने लगी। वह हाँ करना ही चाहती थी कि उसके मन में विचार आया कि इन्दु को भी पूछ लेना चाहिये। उसने यही बात उस ओर को भी कह दी। वह औरत बोली, "माँ जी सिर्फ बात यह है कि उन्हें कहीं और तरक्की में तब्दील होकर जाना है। इसलिये जाने से पहले ही वह अपना विवाह कर लेना चाहते हैं। लेन-देन, पैसा-लत्ता उन्हें किसी चीज की जरूरत नहीं है। इसलिये पक्का जवाब मांगा है ताकि वह दुविधा में न रहें और कहीं और प्रबन्ध कर सकें।"

"शादी का मुआमला है। कोई दुकान का सौदा तो नहीं है कि पैसा-धेला इधर-उधर करके फौरन निपटा लिया जाए। कुछ वक्त तो लगेगा ही।"

"मां जी, आखिर वह कोई ऐसा थोड़े ही कह रहे हैं कि आज शाम को बारात आयेगी। महीना दो महीना लग जाए। लेकिन पहले बात पक्की हो जाए तो फिक्र नहीं रहता। और फिर तुम्हें इसमें मुश्किल ही क्या दीख रही है। तुम उसकी मां हो। इतनी अच्छी हो। वह तुम्हारे दिल का टुकड़ा है जो करोगी उसके भले के लिए करोगी। साफ-साफ जवाब मांगा है। हां या ना तुम्हारे हाथ में है।"

ऐसे निर्विकार भाषण का बुढ़िया पर अच्छा प्रभाव पड़ा। साथ ही उसको ज्योतिषी जी की बात याद आ गई। "महात्मा जी ने कहा था कि अवसर केवल एक बार आएगा। धन्य हैं वह महात्मा जी और धन्य है उनकी भविष्यवाणी। ऐसी ठीक-ठीक बातें भला पहले ही कौन कर सकता है। सचमुच वह भगवान थे जो मुझे मेरे भले की बात पहले ही बता गए।" बुढ़िया मन ही मन उस महात्मा की लाख स्तुतियां करती

रही। वह केवल एक उलझन में फँसी थी। हाय यह औरत ऐसे समय में क्यों आ गई। लड़की यहां होती तो अभी अभी बात अच्छी तरह तय हो जाती। अच्छा, अगले ही क्षण उसने सोचा, "अगर वह यहाँ नहीं है तब क्या हुआ। मैं कौन उसकी बेगानी हूँ। उसकी माँ हूँ। मैंने उसे दस मास पेट में उठाया है। उसको अपनी छाती से दूध पिलाया है। मुझे उसके कल्याण का फिक्र है। मुझे उसके विवाह की चिन्ता है न कि उसको। घर मैंने ढूंढना है उसने नहीं। कौन-सा घर ठीक है यह मैं स्वयं निर्णय करूँगी।" फिर उसे ख्याल आया, "अगर उसने मेरे निर्णय को ठुकरा दिया तब में क्या मुंह लेकर रह जाऊँगी। लड़की का भविष्य भी हमेशा के लिए अंधकारमय हो जाएगा।

बुढ़िया चुपचाप सूई से कपड़ा सी रही थी। सोचते-सोचते उसे अपने विवाह को याद आ गई। वह अपने आप से बातें करने लगी। "क्या मेरे माता-पिता ने मुझसे पूछा था ?—छि, मैं इतनी निर्लज्ज नहीं थी। तब क्या मेरी लड़की निर्लज्ज है। नहीं कभी नहीं, वह मुझसे भी पवित्र है। पढ़ी-लिखी है। आखिर उसने इतनी विद्या पाकर क्या कोई नेकी नहीं सीखी होगी। वह मेरा आदर करती है। मैं उसकी माँ हूँ। उसका कल्याण चाहती हूँ। जो करूँगी उसके भले के लिये करूँगी। दुर्भाग्य से पतिदेव न रहे" यह सोचते-सोचते उसकी आँखों में आँसू आ गये। पास बैठी हुई स्त्री ने देखकर कहा, "किस सोच में पड़ी हो ? यह आँखों में आँसू कैसे ?"

"नहीं, कुछ नहीं।" बुढ़िया ने हाथ में रखे कपड़े से आँखों को पोंछते हुए कहा, "आंसू खुशी के हैं। उनकी याद आ गई थी कि यदि आज वह जिन्दा होते तो मुझे इस झमेले को अकेले क्यों निप्टाना होता और ऐसी खुशी के अवसर पर वह कितने प्रसन्न होते।" बुढ़िया ने हां भर दी और जेवर रख लिये। वह औरत खुशी-खुशी चली गई।

इंदु की अंतिम परीक्षा के परचे शुरू थे। इम्तिहान के दिनों में विद्यार्थियों की यही दशा होती है कि वे अन्य सब बातों को इन दिनों

प्रायः भूल-सा जाते हैं और फिर होशियार विद्यार्थियों का तो कहना ही क्या है। इन दिनों न जाने कहां से इनमें इतनी क्षमता आ जाती है कि चार-पांच सौ पृष्ठों की पोथियाँ एक-एक दिन मे पढ़ डालते हैं और उनमें से काम बातें नोट भी कर लेते हैं।

शाम को अपनी खाट पर बैठी इन्दु पढ़ाई में मस्त थी। मां ने पूछने का साहस किया, "बेटी मैं तेरी शादी की फिक्र में हूँ।"

इदु की नज़र किताब पर थी, "हां ऐसा फिक्र सभी के माता-पिता को होता है। परन्तु अभी मुझे मत छेड़, पढ़ लेने दे। परचे समाप्त होने पर जो जी चाहे बातें कर लेना।" वह फिर पढने लग गई। उसकी मां आगे कुछ न बोली। उसने अपने ही तर्क से अपने निर्णय की पुष्टि करने का यत्न किया। "ठीक ही तो है। अभी लडकी का ध्यान परीक्षा में है। यदि यह बात बता दी तो कहीं उसका ध्यान बहक न जाए। और उसकी पढ़ाई में कसर न पड़ जाए। चन्द दिनों में इसके सब परचे पूरे हो जायेंगे तब निश्चय से सब बातें बता दूंगी।"

# प्रेम की अमिट छाप

कालिज की पढ़ाई और परीक्षा के परचे का अंतिम दिन आ पहुँचा। यही मंजिल का आखरी कदम है जिसके लिये इन्दु दो वर्षों से जैसे तैसे अपने दिन निकालती रही। यही वह दिन है जिस दिन उसके पिता की अंतिम इच्छा की पूर्ति होगी।

सौभाग्य से इन्दु और अजय का परीक्षा केन्द्र एक ही था। दोनों एक दूसरे से परचा शुरू होने से पहले आवश्यक आवश्यक प्रश्नों पर चर्चा कर लिया करते थे और परचा दे आने पर प्रश्नों के जो-जो उत्तर लिख आये हैं उनका भी मुकाबिला कर लिया करते थे। आज भी वैसे ही हुआ। परचा देकर दोनों इकट्ठे हुए। बातचीत करते हुए घर की ओर बढ़ते रहे। अजय के मन में कुछ विचार आया। वह बोला "इन्दु यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो आज हमारे घर होकर चलो। थोड़ी देर बैठ कर चले जाना।"

इन्दु को क्या आपत्ति हो सकती थी। वह पहले भी कई बार वहाँ जा चुकी थी और आज तो वह स्वयं भी चाहती थी कि कोई अवसर मिले जिससे अपने मन चाहे मित्र से घड़ी दो घड़ी बैठकर बात ही कर ली जाये। आज आखरी परचे का दिन था। पढ़ाई खतम हो रही थी। दोनों साथियों का कालिज का साथ समाप्त होने को था। क्या जाने फिर कभी मिलना हो या न हो। इस लिये उसने कहा, "आज तो मैं आपके बिना कहे भी आपके साथ जाने वाली थी।" इन्दु

के मुँह से अनायास ही ये शब्द निकल गये। बोलने के पश्चात उसे लाज सी अनुभव हो रही थी।

अजय खुश हुआ और ये दोनों थोड़ी देर में ही कमरे में जा पहुँचे जो इन्दु को बहुत अच्छा लगता था। नित्य की भाँति सीताराम खाद्य-सामग्री लाया और अजय ने भी नित्य की भाँति उससे प्रश्न किया, "क्यों भाई सीताराम अब तो तुम पक्के शहरी हो गये हो, अब तुम्हारे ईश्वर की क्या तारीफ है ?"

सीताराम के उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए ये दोनों खाने-पीने में लगे रहे। सीताराम अब पक्का शहरी हुआ जाता था। उसके विचारों में व्यापकता और सम्पर्कों में विपदता होती चली जा रही थी। वह अजय के साथ कई तरह की मण्डलियों में जाता रहा था। संगीत सभा में जाने से उसे संगीत का महत्व मालूम हुआ। कवि दरबारों में जाकर उसे कविता का महत्व मालूम होने लगा था। आर्यसमाज में जाकर हवन और वेद मन्त्रों का प्रभाव भी उस पर पड़ा था। अब वह ऐसे ईश्वर का खण्डन करने लगा था जो सर्वशक्तिमान न हो। वंशी वाला ईश्वर नहीं हो सकता। वह सब विद्याओं को नहीं जान सकता। सर्वशक्तिमान होने के लिये उसमें असाधारण लक्षण होने चाहियें। अभी तक सीताराम की बुद्धि का आरम्भिक विकास हो रहा था। इसलिये उसकी धारणायें परिपक्व अथवा पुष्ट नहीं हो पाई थीं। वह सर्वशक्तिमान का अभी तक इतना ही अर्थ समझा पाया था कि यदि उस ईश्वर की चार भुजायें हों तो वह सचमुच सर्वशक्तिमान हो जायेगा। इस कारण चतुर्भुज सत्यनारायण की ही मूर्ति अब उसके मन में घूमा करती थी। इन सब बातों से प्रभावित वह बोला—"बाबूजी, भगवान सर्वशक्तिमान है। उसकी चार भुजायें हैं। उसमें शांख, चक्कर, गदा और पदम होते हैं जिससे वह सारे संसार का कल्याण करते हैं।"

अजय ने कहा, "शक्तिसाधन तो तुम्हारे भगवान के हथ में सब दिखाई देते हैं परन्तु क्या संगीत और काव्य जैसी कलाओं को वह

जानते ही नहीं ! यदि जानते हैं तो उनके पास उसका भी कुछ न कुछ साधन अवश्य होना चाहिये था।"

"बाबूजी मैं आपसे क्या बात कर सकता हूँ। हाँ ऐसा मालूम होता है कि होना जरूर चाहिये था।" इतना कहकर सीताराम तो खाली प्लेटों को उठाकर ले गया। आगे वह कहता भी क्या। ईश्वर एक हो तो उसकी कल्पना भी मानवों में एक सी होती। मगर जहाँ तक जिस की बुद्धि काम करती है वैसा ही उसका ईश्वर भी है। कोई पूजे अथवा माने तो किसको और क्यों। इस दिशा में सीताराम के अनुभव देखने योग्य हैं।

अजय और इन्दु खाने के मजे में उठकर आमने-सामने काउच पर बैठ गये। इन्दु ने आज नया सूट डाला था। उसका रूप और यौवन अद्वितीय था। इस रूपसी चिरयौवन स्वर्गिक बाला का धवल मृदु गात स्निग्ध और सुरभित फूलों की माला-सा इस स्थात पर शोभायमान हो रहा था कौन भाग्यशाली होगा जिसके गले में यह जयमाला पड़ेगी। इसके फूल की पंखड़ियों से गुलाबी रसभरे होंठ और उन पर मन्द मुस्कान अपार शोभा बखेर रहे थे। कौन भंवरा होगा जो इस का पान करेगा। उसका तेजोमय मस्तक चन्द्रमा की तरह शीत किरणों का प्रसार करता हुआ जान पड़ता था। उसके मदभरे नयन और मस्ती सचमुच नश ही नश बखेर रहे थे। लाल-लाल चिकने गाल ऐसे थे जिनका स्पर्श अब तक केवल उसकी बालियों को ही प्राप्त हो सका था। उसकी सुराही सी ऊँची गर्दन उसके चन्द्र से मुख को ऐसे उठाये हुए थीं जैसे किसी ऊँची टहनी पर कमल का फूल खिल रहा हो। उसके घने काले घुंघराले बाल कन्धों से छूकर लौटते से दीख पड़ते थे। इन जुलफों की खुशबू और चमक निराली थी। न जाने किसके भाग्य होंगे जो इस महक का आनन्द उठायेगा। पानी लहर सी डोलती इसकी गोल गोल सुकुमार भुजायें हलकी-हलकी चूड़ियों का भार कैसे सहन करती होंगी। ये फूल से हाथ न जाने किसी पीठ पर फिरेंगे। इसके मूर्ति में

खुदे से, गेंद की तरह गोल-गोल उरोज, पतली कमर और मस्तानी चाल को देख कर हर कोई धक से रह जाएगा । ऐसी सरल परन्तु विदुषी सर्वसुन्दरी अप्सरा-सी वह बाला अजय के सामने बैठी कमरे में अपूर्व सुषुमा का प्रसार कर रही थी । इसके पास यदि कोई कमी थी तो वह थी अनुभव की । मगर वह तो वस्तु ही ऐसी है जो आयु के साथ अर्जित होती है ।

यहाँ बैठने पर अजय ने कहा, "इन्दु आशा है कि तुम मुझे भुला नहीं दोगी । कालिज की पढ़ाई समाप्त हुई तो क्या हुआ हम फिर भी मिलते रहेंगे ।"

जैसे हवा चलने पर कलियों की पंखड़ियाँ हिलती हैं ऐसे इन्दु के होंठ खुले, "पुरुषों का हृदय कठोर होता है । वे भूल जाते हैं । मेरे लिये यह असम्भव है ।"

"नहीं इन्दु ऐसा मत समझो । बेशक पुरुषों के हृदय नारियों की उपेक्षा कठोर होते हैं परन्तु उसके साथ ही साथ दृढ़ भी होते हैं । अटल रहते हैं । मैंने तुम्हें अपना सब कुछ दे डाला है । यदि तुम भी ऐसा ही करो तो हम दोनों को कोई भिन्न नही कर सकता ।"

"मेरे पास है ही क्या जो तुम्हें दे दूं । मानसिक रूप से मैं पहले ही तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ । यदि चाहो तो शरीर भी तुम्हें सौंप दूंगी । शेष मैं सर्वथा दरिद्र हूँ, अकिंचन हूँ । यदि निर्विघ्न निर्वाह ही जीवन का लक्ष्य है तो उसके योग्य भी मेरे पास साधन नहीं है ।"

इन्दु के मुख से शब्द "तुम्हें और तुम्हारी" अजय को बहुत भले मालूम हुए । मगर इसके साथ ही अंतिम वाक्य उसके हृदय में तीर की नोक की तरह पीड़ा दे रहा था । वह उठकर इन्दु के पास आ गया और उसके कन्धों पर हाथ रखते हुए बोला, ऐसा मत कहो, ऐसा मत सोचो । जो कुछ मेरे पास है वह सब तुमने अपना समझा । तुम जैसी सर्वगुण सम्पन्न नारी को कभी किसी बात का टोटा नहीं रहेगा ।" अब इन्दु भी खड़ी हो गई थी । अजय बोलता रहा, "तुम मेरे दिल में हो ।

समय आयेगा तब तुम्हें अपना जीवन साथी बनाऊँगा। अभी नहीं जानता कि मेरे माता पिता का आगे क्या करवाने का विचार है। इस समय इस विषय पर उनसे कोई भी बात करना मैं उचित नहीं समझता और अभी उसकी जल्दी भी क्या है।"

इन्दु ने भी सोचा, "ठीक ही तो है ; अभी इसकी जल्दी भी क्या है। समय आएगा तो इसके माता-पिता से मेरी मां सब बातें तय कर सकती है। इन्दु को आगे कुछ कहने को न सूझ रहा था। अब वह वहाँ से घर चलने का यत्न करने लगी। उसका मन कुछ बेचैनी सी अनुभव कर रहा था। उसके पैर भारी हो रहे थे। वह चलना चाहती थी परन्तु पैर जरा भी न हिलते थे। अंत में वह सारा साहस बटोर कर बोली, "अच्छा अजय मैं अब जाती हूँ। माता जी इन्तजार कर रही होंगी। यदि मिलना न भी हो सका तो पत्र लिखते रहेंगे। यह कहते कहते उसकी आँखों मे हजार यत्न करने पर भी दो आँसू ढ़रक आये अजय का भावुक हृदय प्लावित हो उठा। उसमे यह कब देखा जा सकता था। वह सोचने लगा "अरे इस लड़की के हृदय में मेरे प्रति कितना प्यार छपा हुआ है।" उसने अपने हाथों से उसके आँसू पूँछे उसकी ठोडी पर हाथ रखा। उसका चाँद सा मुंह जरा ऊपर को उठाया। इन्दु की दृष्टि भूमि पर और अधर मौन धारण किये थे। अजय बोला, "इतनी उद्विग्न क्यों होती हो। जैसे हम फिर कभी मिलेंगे ही नहीं।" इन्दु की अपनी भावुकता पर शरम सी अनुभव हुई वह चुप रही हाँ उसकी आँख जरा ऊपर को उठी। अजय का अपना दिल अन्दर ही अन्दर उमड़ रहा था। उसमें एक भारी तूफान सा क्षण भर में चला गया। हृदय का स्पंदन बढ़ गया। और सारे शरीर में रक्त प्रवाह एक दम तेज हो गया था। इस अवस्था में उसे स्वयं भी मालूम न हुआ कि उसके अधर कब इन्दु के अधरों से जा मिले। अधर से अधर मिलते ही इन्दु की सुकुमार भुजायें यन्त्रवत अजय की गर्दन से झूल गईं और अजय की उंगलियां उसके सुगंधित जुलफों के बीच रींगने लगीं। दोनों

को एक नया अनुभव और अनोखा आनन्द मिल रहा था। यदि कोई पूर्ण-परमानन्द है तो वह उनको प्राप्त हो गया। संसार का सारे का सारा संताप व झोंक इस समय लुप्त प्रायः हो गई। वे स्वप्न अवस्था में थे अथवा जागृत अवस्था में थे इसका भी उन्हें भास न रहा। इन्दु की सामाजिक सीमायें और अजय का तर्क न जाने इस समय किधर लोप हो गये। दोनों नशे में थे। इन्दु की आँखों से दो बूंद आँसू और ढरक आये। सम्भवतः पहले आँसू विरह-स्मरण के थे और पश्चात के मधुर-मिलन के। अजय ने उन्हें भी पूछ डाला। बात की बात में इतना सब कुछ हो गया। हाय किसी ने देख न लिया हो, दोनों के मन में यही शका थी। इधर-उधर देखा। वहाँ कोई न था। उनको कुछ सांतवना हुई।

इन्दु को कुछ ग्लानी का अनुभव हो रहा था। उसने मन ही मन उस इंग्लिश फिल्म को कोसा जो कि उसने पिछले साल अपनी सहेलियों के साथ देखी थी। और जिसमें इस प्रकार का अभिनय उसको अत्यन्त अरुचिकर लगा था। परन्तु प्रकट में बोली, "अरे यह क्या हुआ मैं यहाँ पर किसलिए आई थी। उसने झट से अपनी नोटबुक उठाई और घर की ओर चल दी। अजय देखता ही रह गया। कि वह आँखों से ओझल हो गई। अजय का शेष समय उसकी मधुर स्मृतियों और चुम्बन के औचित्य की विवेचना में कटा।

इन्दु जूं जूं घर के पास पहुँचती थी तूं-तूं अपने बालों को संवारती थी। होंटों को बार-बार पूंछती थी। "कहीं इसमें कोई ऐसा चिन्ह न हो जिससे किसी को आज की घटना की भनक मिल जाये।" परन्तु वहाँ क्या था। बिचारी ने खामखाह पूंछ-पूंछ कर अपने होंट सुखा दिये।

# सामाजिक कारा के बन्दी

जब इन्दु घर पहुँची तो यहाँ पर सब बातें ज्यों की त्यों थी। माँ ने नित्य की भाँति अपनी प्यारी पुत्री को भोजन आदि दिया। शाम हो गई थी। घरों में बिजलियाँ जल गई थीं। इन्दु के परचे समाप्त हो गये थे उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे एक बड़ा भारी बोझ जो कि उसके सिर पर था। वह उतर गया। वह आराम का साँस ले रही थी उसके अतिरिक्त प्रिय-मिलन की मधुर स्मृतियाँ उसे प्रसन्न कर रही थीं।

माँ ने अपना विस्तर नीचे खोलते हुए कहा, "बेटी तुम्हारे परचे तो आज समाप्त हो गए। ईश्वर करे तुम पास हो जाओ। तुम्हें इन दिनों बात तक करने की फुरसत न थी।"

इन्दु अपने खाट पर पड़ी छत के उलटान की ओर मुँह किये अपने दोनों हाथ माथे पर रखे हुए लेटी थी। वह खुश थी। एक दम उठकर बोली, "हाँ माँ अब जितना चाहो बातें करो! अब सिवाये बातों के मैंने करना भी क्या है।"

विस्तर पर बैठी और बोली, "मैं तुम्हारे व्याह की बात ठीक कर रही हूँ।" इन्दु जरा चौक गई। बुढ़िया ने बात को जारी रखा, "चाहती थी कि तुम्हें ऐसा वर मिले जो गुणी हो और सुन्दर हो। मेरी बेटी भी तो सुन्दरी है।" इन्दु ने सोचा अजय में दोनों गुण मौजूद है। और घर भी अच्छा हो। खाने-पीने और पहनने में किसी तरह की

तंगी न हो। नहीं तो मेरी फूल सी बेटी का चेहरा कुम्हला जायेगा।" इन्दु ने फिर सोचा कि अजय में सब बातें वर्तमान हैं। वह वा हैसियत है। वह लज्जित-सी एकटक ज़मीन की ओर देखती रही। "बेटी, आज तेरे पिता होते तो यह कार्य बड़ी सरलता से निपट जाता। परन्तु मैं हूँ औरत जात और वह भी हड्डियों का ढांचा। क्या करूं, कैसे करूं, बड़ा कठिन था।" इन्दु चुपचाप सुन रही थी। "खैर जैसे-तैसे सब बातों को ध्यान में रखकर मैंने तुम्हारा वर ठीक चुन लिया है। इन्दु का कौतुहल बढ़ गया। हृदय की गति तेज हो गई। साँस जल्दी जल्दी चलने लगा। मगर वह चुप रही। "वह गोविन्द बड़ा सुशील स्वभाव का व्यक्ति है। स्वयं अपना दूत भेज कर रिश्ता माँगने भेजा था। न कोई लेन या देन की बात न दहेज ही का झगड़ा-बखेड़ा। आखिर कुलीन आदमी है। मुझ जैसी गरीब विधवा को तो ढूँडने से भी तेरे लिए अच्छा घर प्राप्त करने की आशा नहीं थी। परन्तु उस भगवान की बड़ी कृपा है कि वह हर समय मेरी सहायता करते हैं। मैंने सब बातों को अच्छी तरह सोच समझ कर हाँ कर दी।

इन्दु को सर्वनाश की सूचना मिल गई। उसे ऐसे लगा कि सौ बिछुओं ने उसे एक साथ काट खाया। उसके सारे शरीर में पसीना पड़ गया। चेहरा पीला हो गया। बोलने की इच्छा रखते हुए भी उसके मुंह से बात ही न निकल सकी। वह चारपाई पर फिर पूर्ववत लेट गई। मगर उसे लग रहा था। अभी गिरी, अभी गिरी। बुढ़िया इन्दु की अन्तर वेदना को तो न देख सकी, मगर उसकी खामोशी को देखकर पूछने लगी, "बेटी तुम चुप क्यों हो, कुछ बोलती क्यों नहीं।"

इन्दु आवेश में थी। वह आतंकित स्वर में बोली, "इतना कुछ हो गया और मुझसे बात तक नहीं की ?"

"बेटी कुछ अवसर ही ऐसा आया कि जल्दी-जल्दी सब तय करना पड़ा। विधाता की ऐसी इच्छा थी और फिर मैंने एक दिन तुझ से बात करने की चेष्टा भी की थी। परन्तु तूने कहा कि मैं अभी कोई बात

नहीं कर सकती। परीक्षा समाप्त होने पर जी भरकर बातें कर लेना मुझे तुम्हारी बात ठीक जची। कदाचित इन दिनों तुम्हारा ध्यान इधर-उधर करना उचित नहीं, यही सोच कर मैं चुप हो रही। मगर इधर भी अवसर ऐसा था कि मुझे तय अवश्य कहना था। मेरे लिये इधर कुँआ और उधर खाई वाली बात थी। फिर किसी न किसी तरह तय करना ही था। इसलिये मैं तुम्हारी अनुमति न ले सकी। तब अपना अधिकार समझते हुए इस स्थिति का ऐसे ही सामना करना सम्भव जान पड़ा।" इन्दु का दिल बैठा जा रहा था। उसका गला सूख गया। वह खाली मुह घूंट ले रही थी। बुढ़िया बोलती रही "फिर सोचा कि मैं कौनसा बुरा काम करने जा रही हूँ। अपनी बेटी के सुख दुःख का मुझ से अधिक ध्यान किसको हो सकता है।"

इन्दु अब भी चुप थी। बुढ़िया को यह अच्छा न लगा। उसे यह मौन भयावना लगने लगा। वह खिन्न होकर बोली "बेटी तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो। तुम्हें कोई आपत्ति है क्या?"

"मुझे हो तो क्या बात टूट सकती है।" आखिर इन्दु ने साहस बटोर कर प्रश्नात्मक भाव से कह ही दिया।

बेटी बात कैसे टूट सकती है। यह अच्छे घरों की बातें नहीं होती। कमीने लोगों की लड़कियाँ तो अपने आप भाग भी जाती हैं। कुलीनों के माँ बाप ही रिश्ते तय किया करते हैं और धर्म के अनुसार विवाह रचाते हैं। अच्छी सन्तान अपने माता पिता की आज्ञापालन करके घर की मान-मर्यादा की रक्षा करती हैं। और तुम्हारे विवाह की बातचीत किसी से छिपी नहीं है।"

"यह तो केवल मुझ से छुपी थी। जब इतना हो चुका है तो मुझ से पूछने की बात ही क्या रह गई है।" इन्दु के कलेजे में घाव था। वह पीड़ा से मरी जा रही थी। वह किसी से कुछ बोलना न चाहती थी। उसने शुष्क रीति से बात करते हुए कहा 'माँ", उसे इस शब्द के उच्चारण में भी कुछ संदेह हुआ मैं बहुत थकी हुई हूँ। मुझे सो

लेने दो।"

माँ सुन कर चुप हो रही और इन्दु सोने का बहाना बना कर सारी रात रज़ाई के बीच रोती रही। बहुत रात गये उसे नींद आ गई।

इन्दु का मन उद्विग्न था। वह किसी को अपना मुंह तक न दिखाना चाहती थी। सोच और फिक्र से वह घुल-घुल कर दिन प्रति-दिन दुर्बल होती जा रही थी। उसका फूल सा मुखड़ा मानो सहरा की धूप से झुलस कर मुरझा गया हो। उसे रात को नींद और दिन को भूख न थी। वह काफी दिनों तक किंकर्तव्य विमूढ़ रही। बात इतनी आगे बढ चुकी थी कि वह अपने मन की बात माँ से कहना व्यर्थ समझती थी। अनपढ़ लडकियाँ तो अपने बडों पर अपना सर्वस्व बलिदान करने में अभ्यस्त सी देखी गई हैं मगर पढी लिखी लडकियों को ऐसा करने में झिझक होती है। वे बुद्धि से काम लेने की चेष्टा करती हैं और अन्धे कूंए में कूदने से पहले प्रकाश की खोज करती हैं। वह चाहे सुखी न रही हों परन्तु नारी जाति का उत्थान उन्हीं के सत्याग्रह से हुआ है। इन्दु अपनी मनोव्यथा का भार बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों अकेले ही ढोती रही।

इधर शादी का दिन तय हो गया था। केवल एक महीना शेष रह गया था। इन्दु सोचती ही रही। वह नारी थी और फिर अनुभव हीन। वह समझ न रही थी कि क्या करे और क्या न करे। कभी उसके मन में आता कि आत्मघात कर लूं। परन्तु निश्चय न कर पाती। आखिर प्राणत्याग कोई सरल कार्य तो नही है। बल्कि यही वह धुरी है जिस पर जीवन के सारे सिद्धान्त चक्र काटते रहते हैं। तब इन्दु को याद आता कि प्राणों की रक्षा ही तो प्राणियों के जीवन का ध्येय है। फिर इसे त्यागना उचित नहीं है। वह कई बार इरादा करके भी आत्महत्या न कर सकी। वह सोचने लगी कि इन्कार कर दूं मगर अब उसे पूछने वाला कौन है। सब जानते हैं कि इन्दु का विवाह गोविन्द से होने वाला

है। उसके मन में हजारों प्रश्न उठने लगे। मैं इन्कार करना क्यों चाहती हूँ। इसलिये कि मैं अजय से प्रेम करती हूँ। हाँ, इसी लिए। मगर अजय के प्रति प्यार को मुझसे कौन छीने जा रहा। तब किस लिये? इस लिये कि अजय सुन्दर है। मगर गोविन्द भी तो सुन्दर है। अजय का अच्छा घर है तो गोविन्द भी तो अमीर है। आखिर गोविन्द में कौन सी ऐसी बात है जिसको देख कर मैं उससे घृणा करूँ। मुझे कुछ मालूम नहीं है। मैं उस बिचारे पर खामखाह् कोप कर रही हूँ। उस दिन उसने अपनी माँ को इस लिये झाड़ दिया था कि उसने मुझ से अच्छा व्यवहार नहीं किया था। पीछे आकर मुझ से मुआफी माँग ली। भक्त स्वभाव का व्यक्ति है। ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखता है। मेरे मन मे ईश्वर की अवास्था उठती जा रही है तो उससे क्या। इससे किसी के सम्बन्ध क्यों खराब हों। वही अजय नास्तिक था और मैं आस्तिक। तब क्या वह मुझे प्यार न करता था। वह करता था। अब भी और तब भी।" अब भी इतना सोचकर इन्दु को कुछ टीस सी अनुभव हुई।

इन्दु एक वृक्ष की छाया में बैठी थी। इधर उधर हरी हरी घास थी। समय सुहाना और शीत वायु बह रही थी। मगर इन्दु को सब उजाड़ मालूम पड़ रहा था। वह वातावरण से सर्वथा विमुख और उदासीन थी। वह सोचने लगी, "अच्छा मानलो गोविन्द में कोई दोष नहीं। परन्तु वचन भी तो कोई मूल्य रखता है। मैंने अजय को वचन दिया है। मान लो मैं मन मार कर गोविन्द से शादी कर लेती हूँ। मगर उससे अजय से विश्वास-घात होगा मैं उसे चाहती हूँ और वह मुझे चाहता है। मैंने अपनी चाहत को आग लगा दी, फूँक डाला, मगर उसकी चाहत को मैं कैसे भस्मीभूत कर सकती हूँ। उससे तो मैंने वायदा किया था कि मानसिक रूप से तो तुम्हारी दासी हूँ ही, सो तो मैं अब भी रह सकती हूँ सकती क्या रहूँगी। मगर मैंने यह भी कहा था कि यह शरीर भी तुम्हें सौंप सकती हूँ। उसने स्वीकार भी किया था। कहा

था जो कुछ मेरा है उस सब को अपना समझो। हाय दोष मुझ में है। उस निरापराध को कैसे दण्ड दिया जाये। उससे कैसे विश्वासघात किया जाये।" इन्दु को प्रेम की अमिट छाप चिर अमर वह चुम्बन भी याद आ गया। क्षणभर के लिये वह अपनी मनोव्यथा को भूल सी गई। नहीं गोविन्द में चाहे कोई दोष न हो, मैं पहले ही अजय की हूँ। मैंने पहले उसे ही चाहा था। मैंने गोविन्द को कभी नहीं चाहा। माना धार्मिक रीति से गोविन्द का मुझ पर प्रथम अधिकार है। परन्तु यह धर्म है क्या ? कुछ नहीं। जब ईश्वर ही नहीं है तो धर्म किसका रह गया। धर्म का कोई संकट मेरी राह में बाधा नहीं डाल सकता। अब सवाल रह जाता है कि मैं किसकी हूँ। अजय की या गोविन्द की। किसकी हूँ। किसका अधिकार है मुझ पर।" इतना सोच कर इन्दु ने अगले ही क्षण निज को और समाज को कोसा "धिक्कार है इस समाज पर और धिक्कार है मेरी इस शिक्षा पर। क्या मैंने यही विद्या पाई है। मैं कोई भेड़ बकरी थोड़े ही हूँ। क्या अब भी वह दास दासियों का युग है। मैं बाज़ार में बिकने वाली वस्तु हूँ कि जिसने चाहा खरीद लिया। या जिसने कहा मेरी है, उसकी हो गई। मैं ऐसा सोचती ही क्यों हूँ कि मैं किसकी हूँ। मैं इन्सान हूँ। किसी की नहीं, अपनी हूँ। बिल्कुल वैसे ही जैसे कोई स्वतन्त्र नागरिक होता है। क्या कभी कोई पुरुष भी यह सोचता है कि वह किसका है। नहीं यह विचारधारा ही निर्मूल है। कोई आदमी किसी का नहीं होता। वह स्वयं स्वतन्त्र है। वह यदि कुछ है तो सारे समाज का प्रतिबिम्ब है। वह पुरुष हो या नारी, कोई किसी का नहीं।

जीवन का उद्देश्य क्या है ?—जीना—तब मैं जीऊँगी। मगर जीना भी कैसे ? निर्विघ्न निर्वाह मुझे मिलना चाहिये, वही उचित है। वही जीवन का मूल मन्त्र है। मैं इसी सूत्र के अनुसार अपने जीवन को निभाऊँगी। मैं अजय के कथन का अनुसरण करूँगी। तब चाहे गोविन्द से ब्याही जाऊँ या अजय से या किसी और ही से। मुझे उससे क्या।

जीवन पर्यन्त मेरा निर्विघ्न निर्वाह होगा या नहीं। मैं जानती हूँ कि गोविन्द से विवाह होने पर सरलता से ऐसा हो सकता है। आखिर चार-सौ रुपया तनखाह लेता है। और तरक्की होगी। निर्वाह बड़ी सुगमता से होगा तब चिन्ता किस बात की है। मैं खामखाह फिक्र में घुल रही हूँ। देखा मैंने अकारण ही अपने शरीर को दुर्बल कर डाला है। माँ ठीक ही तो कहती है कि कुलीन लड़कियों के सम्बन्ध में उनके माता-पिता तय करते हैं। मेरी माँ ने मेरे लिये कुछ बुरा नहीं किया। हाँ इतनी बात अवश्य है कि वह मुझसे पूछ लेती। मुझसे पूछने पर कुल की मर्यादा को कैसे बट्टा लग सकता था। यह माँ जी की ज्यादती है। मैं कोई गँवार लड़की न थी कि मुझे कोई समझ ही न हो। मैं समय पर जान जाती तो अजय से यहाँ तक वायदा न करती। अरे हाँ मैं अजय की ही बात तय करवा लेती। चाहे अजय कुछ कहता मैं उसे मनवा लेती। मेरे मन की इच्छा पूरी हो जाती, वायदा भी पूरा होता और कुल की मर्यादा पर भी किसी प्रकार की आँच आने की बात न उठती। और फिर घर, वर सब सम्पन्न थे। जीवन पर्यन्त निर्विघ्न निर्वाह सुगमता से हो सकता था। अजय से विश्वासघात की नौबत भी न आती। विश्वासघात—" वह बात इन्दु के मन में तीर की भाँति चुभ रही थी। वह इस भाले से मुक्त होना चाहती थी। बोली, "मैं विश्वासघात क्यों करूँगी। जिस प्रिय मित्र ने कभी मेरा अकल्याण नहीं सोचा। जो आड़े समय मेरे काम आया। जो मेरी हर तरह की शंका का समाधान कर सकता है, जो विद्वान है जो गीता की परिभाषा के अनुरूप स्थितप्रज्ञ है, ऐसे निर्विकार तेजस्वी प्रियदर्शी को क्यों धोखा दूं। मैं ऐसा पाप नहीं करूँगी। मैं उसके साथ भाग जाऊँगी। वह मुझे सहारा देने की सामर्थ्य रखता है। कुलीन न सही कमीनी सही। प्राण जाये पर वचन न जाही। वह राम क्या कुलीन न थे। मैं अपने वचन को रखने के लिये समाज की दृष्टि में कमीनी सही मगर सब कुछ करूँगी।"

कई दिनों की उधेड़बुन के बाद इन्दु ने निश्चय कर लिया, मैं अजय

से मिलूंगी। उससे सब बातें कहूँगी और कहूँगी कि मैं ज्यों की त्यों अपने वचन पर दृढ़ हूँ। लो मेरा हाथ पकड़ लो। अब स्थिति से निपटना तुम्हारा काम है। समाज जाये चूल्हे में।" यही निश्चय कर इन्दु एक दिन अवसर उपयुक्त देखकर अजय के घर को चली। वहाँ जाकर देखा मगर अजय वहाँ न मिला। पूछा कि कहाँ है। मालूम हुआ कि वह कलकत्ते को अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ गये हैं। दो-तीन महीने में जब रिजेल्ट निकलेगा, वापिस आयेंगे। इन्दु पर वज्रपात हो गया मगर वह मरी नहीं। वह अपने आप बोली, "यहाँ का रिजेल्ट तो जल्दी ही निकल जायेगा।" उसकी मायूसी की हद न रही। वह अत्यन्त खिन्न अपने घर को लौट चली। उसके सामने फिर उलझन जान पड़ी। "अजय कहता था भाग्य कुछ नहीं है। तब यह क्या है। भाग्य न सही दुर्भाग्य तो है। मेरा है तो उसका भी साथ ही होगा। मैं अपने वचन को रखने के लिये यहाँ तक आई थी। राम वन को गये थे तो क्या मैं भी वन को चल दूं। इस विवेचना में इन्दु और गम्भीर हो गई। उसने सोचा, "राम क्यों वन को गये थे। उसका किस से क्या वचन था। उन का तो कोई वचन न था। वचन तो उनके पिता का था। ह तो जब उन्होंने अपने पिता के वचन को रखने के लिये इतना कुछ किया तब मेरा तो अपना वचन है। मुझे तो और भी दृढ़ होने की आवश्यकता है।" इतने में ही इन्दु को एक और विचार उर्मि ने आ दबोचा। "अरे मेरा वचन तो मेरा है, तो क्या मेरी माँ का वचन वचन ही नहीं। मेरे वचन को तो केवल मैं ही जानती हूँ या अजय जानता है, मगर माँ के वचन को तो सारा समाज जानता है। उसका कौन रखेगा। हाय यह कैसी दुविधा है। इधर खाई तो उधर कुंआ। बस अब हो गया।" इन्दु रास्ते में चलती चलती रुक गई, "स्वयं दुर्भाग्य ने तय कर लिया। मैं माँ का वचन पूरा करूंगी और एक सद्व्यवहार भारतीय ललना की भाँति अपना जीवन व्यतीत करूंगी। मर्यादापुरुषोत्तम राम के पदचिन्हों पर चलूंगी। मैं जो अब तक कौड़ी-कौड़ी के लिये तंगदस्त रहती हूँ चार सौ

मासिक की स्वामिनी हूँगी। मुझे किस बात की कमी रहेगी ? खामख ह परेशान हो रही हूँ। यौवन के इन दिनों को क्यों घुल-घुल कर गवाऊँ। खूब खाऊँगी, पीऊँगी, पहनूंगी और मौज उड़ाऊँगी। समाज के सब नियम, उपनियम कृत्रिम हैं। किसका पालन किया, किसका न किया, बात एकसी है। मगर एक बात जरूर है, मैं आजकल इतना सोचती क्यों हूँ क्या मेरा दिमाग ठिकाने है। अब मैं अधिक नहीं सोचा करूँगी। कहीं ऐसा न हो कि दिमाग में कोई फतूर ही पड़ जाये। लोग कहेंगे कि एम० ए० तक पढ़ कर यह लड़की पागल हो गई। मगर फिर वही लोगों का डर, समाज का भय तंग करने लगा। नहीं मैं अब कुछ न सोचा करूँगी।" इन्दु सोचने की इच्छा न रखने पर भी सोच ही में उलझी रहती। जिससे उसका फूल सा चेहरा कुम्हला गया और वह दुबली हो गई। इसी उधेड़ बुन में उसकी विवाह की तिथि भी आ पहुँची।

# साँच को आँच

इन्दु एक अत्यन्त साधारण घर की लड़की थी। उसकी माँ ने जैसे-तैसे पड़ोसियों की सहायता से बारात के लिए उचित प्रबन्ध किये। बारात भी कोई साधारण न थी। गोविन्द स्थिति को जानता था; इसलिए उसने अधिक आदमियों को नहीं भेजा। इसके अतिरिक्त उसका अपना सामाजिक दायरा कुछ सीमित था। जिनको सज्जन, और शरीफ आदमी कहा जाता है उनसे गोविन्द का सम्पर्क पहले ही कम था। इससे भी बारात की समस्या इन्दु की माँ के लिए जटिल नहीं रही।

इन्दु की कालिज की सखियाँ तो उसके विवाह में एक भी शामिल नहीं हुई। न ही उनको किसी से सूचना प्राप्त थी। हाँ पड़ोस की चन्द लड़कियाँ या नई-नई विवाहिता महिलायें सखियों के रूप में आकर इन्दु का बनाने सँवारने लगी थीं। यहाँ पर साधारण नकारों और शहनाई वालों का प्रबन्ध था। बैंड बाजे वाले या दूसरे तमाशे वाले लोग न थे। रंगदार कागजों की धज्जियाँ सूतलियों से अवश्य टाँगी गई थी। मकान की टूटी दीवारों पर कुछ चूना छिड़क दिया गया था। जहाँ तहाँ रंग भी छिड़क गया था। इन्दु के हाथों में महदी लगाई गई थी। पड़ौसियों के बच्चो ने फूलों को एकत्र करने में बड़ी ममद की। दो-चार फूलों की मालायें और गुलदस्ते तैयार किये गये। मण्डप को सब रूढ़ियों को ब्राह्मण ने पूरा करने का यथोचित यत्न किया था।

माँ के पास लड़की को देने के लिए पहले तो था ही कुछ नहीं,

मगर तो भी वह कुछ रसोई के बर्तन और सिलाई की मशीन को देना चाहती थी। इन्दु जानती थी कि इससे बुढिया माँ की रोजी भी समाप्त हो जायगी। बुढ़िया के बड़े जोर देने पर भी उपने उनको दहेज रूप में ले जाने से स्पष्ट इनकार कर दिया था। न केवल बुढ़िया की मजूबरी को देखकर बल्कि असूलन भी इन्दु किसी भी प्रकार के दहेज के बिल्कुल विरुद्ध थी।

विवाह बिल्कुल सरल था। चाहे यहाँ पर रईसों के से ठाठ न दिखाई देते थे। चाहे यहां पर वह सारी बेकार की फजूलखर्ची का नाम व निशान भी न था तो भी इस साधारण समारोह का प्रभाव इन्दु और उसकी माँ के लिए सम्पूर्ण रूप से वैसा ही था जैसा कि किसी बड़े रईस की बेटी के विवाह का होता है। इन्दु को बाबुल के घर को विदा कहना था। माँ को अपनी एकलौती बेटी से बिछुड़ना था। विवाह की वेदी की रस्में पूरी होने के बाद इन्दु माँ से अन्तिम बार विदा लेने को आई। वह बेतरह सिसकियों भर-भर कर रो रही थी माँ की छाती से जा लिपटी। उसका यह आलिंगन खुलता ही न था। माँ की आँखों से भी अनवरत अश्रुधारा बह रही थी। वह अपनी बेटी के आँसू पूंछ रही थी। मगर उसके आँसू पूँछने वाला यहाँ कौन था। यह भी एक अजीब समय होता है। माँ ने अपनी बेटी के लिए सब कुछ प्रबन्ध किए। उसकी खुशी और कल्याण के लिए यह आयोजन उसने स्वयं किया था। मगर फिर भी यह उसी के लिए सब से दुखदाई था। जब इन्दु को जाना था। वह माँ से जूदा हुई। माँ को लगा कि उसकी आँतों को ही कोई खींचे लिए जा रहा है।

जब इन्दु सुसराल को रवाना हुई तो उसे ऐसा लगा कि वह जो ध्वनि सुन रही है वह नकारों की नहीं बल्कि फेफड़े पर डौंडियाँ पड़ने की ध्वनि वह सुन रही है। उसको साँस लेने में भी कठिनाई अनुभव हो रही थी।

जिस छोटे से घर में अभी बड़ी चहल-पहल थी वह श्मशान की सी

खामोशी धारणा कर गया था। बुढ़िया को वहाँ अकेले डर लगता था वह रहना भी न चाहती थी। मगर कहाँ जाती। उसे उसी सुनसान में रहना था और वह वहाँ रही।

साँच को आँच नहीं.....कहने को तो यह कहावत बड़ी दिलचस्प और प्रभावशाली है मगर तो भी इसके विपरीत संसार में बहुत सारी बातें होती रहती हैं। गोविन्द की चालें सफल हुईं। सरल बुढ़िया और मासूम इन्दु इस इंधन में न केवल आँच ही खा गईं प्रत्युत जलभुन भी गईं।

बारात गोविन्द के घर पर पहुँच गई। शृंगार सज्जित अप्सरा सी जब इन्दु उसके घर पर उतरी तो गोविन्द ने अपने आपको अहोभाग्य कहा। और भगवान के लाख-लाख धन्यवाद करने लगा, मानो भगवान ही ने उसको यह सफलता प्रदान की थी।। यह संसार का प्रचलित नियम है कि बदमाश से बदमाश व्यक्ति भी जब अपनी योजनाओं में सफल होता है तब वह उसके लिए भगवान अथवा किसी मान्य देवता का शुक्र करता है। अफीम बेचने वाले जब अवैध रूप से लोगों को जहर पहुँचाने में और बेहद मुनाफा कमाने में सफल हो जाते हैं तो वे भी तह दिल से ईश्वर का धन्यवाद करते हैं। भोज और यज्ञ करते हैं। जुआरी जब जूए में अच्छी खासी रकम हथ्या लेता है तो भगवान को भोग भी अवश्य चढ़ाता है। कुछ लोगों ने दफ्तर में तरक्की पाने के लिए राम नाम का जाप अख्तार किया हुआ होता है। अपना गोविन्द भी उन्हीं लोगों में से एक था। रोज दफ्तर में पहुँचते ही सबसे पहले सरकारी कागज़ पर सौ दो सौ दफा "राम, "राम" लिख दिया करता था। और इसकी यह फाइल काफी मोटी हो गई थी और अपने दराज में ताले के नीचे रहती थी। उसका एक फल तो उसको प्राप्त हो ही गया है अब देखिये दूसरा कब तक मिलता है।

गोविन्द विलासी था। मगर विलासिता की ऐसी अनुपम सामग्री उसे अब तक प्राप्त न हो सकी थी जैसी कि आज उसके हाथ आ गई

है। अब वह स्वयं उसका स्वामी है। आज उसकी प्रसन्नता को कौन तोल सकता है। वह आज खुले हाथ बच्चों को मिठाइयाँ बाँट रहा था कन्याओं को पैसे और मंगतों को पूरियाँ दे रहा था। नाई, धोबी, कहार चमार आज सब के सब अपना भाग्य मान रहे थे।

इन्दु को वैसे तो घूँघट का अभ्यास न था। मगर आज उसके मुख पर भी थोड़ा-सा घूंघट उतरा हुआ था। वह घूँघट के बीच से कनखियों में से अपने स्वामी की दौड़ भाग को कभी-कभी देख लेती थी। उसके मन की उदासी दूर हुई जा रही थी, "क्योंकि वह जब काफी दूर निकल आई थी। अब उसे अपने स्वामी की और कुछ आदर और आकर्षण अनुभव हो रहा था। वह सोच रही थी, "वही मेरा जीवन साथी है। सारे घर का भार अकेला उसके कन्धे पर है। उसे घर के सारे काम धन्धों का ध्यान भी रखना होता है और फिर दफ़्तर में भी काम करना पड़ता है। कितनी जिम्मेदारियाँ हैं उन पर। हाय आज तक वह अकेले इस बोझ ढोते रहे। अब घर का सारे का सारा कारोबार मैं सम्भाल लूंगी। वह बेफिक्री से अपना दफतर का काम किया करेंगे। उनका बोझ हलका हो जायेगा। अगर घर की स्त्री से इतना भी न हो सकेगा उसके लिए धिक्कार है। पुरुष दिन भर दफतर में कार्य करें और फिर शाम को उन्हें घर का फिक्र दबाये रखे। इससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। आखिर वे कोई मशीन थोड़े ही हैं जो रात दिन काम करते रहें। बल्कि मशीन को भी अगर आराम न दिया जाये तो वह भी जल्दी ही खराब हो जाती है। सचमुच गृहस्थ के अन्दर नारी का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। मैं अपनी गृहस्थी को एक सुशिक्षित नारी की तरह चलाऊंगी। उन्हें घर के कारोबार से बिल्कुल बेफिक्र कर दूंगी।"

इधर गोविन्द का मन उस स्निग्ध सुकुमार चाँद से मुख को जी भर कर देखने के लिए बेचैन हो रहा था। वह सोच रहा था कि सूर्य भी आज उसी की तरह तेजी से क्यों नहीं चलता जिससे यह दिन

स माप्त हो, रात्रि आये और वह इन्दु से निकट सम्बन्ध के स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति कर सके।

चाहे गोविन्द को यह दिन असाधारण तौर पर लम्बा मालूम हुआ मगर ठीक रोज की तरह नियत समय के बीत जाने पर रात आई। लोग अपने-अपने घरों को चले गये थे। चारों ओर खामोशी बढ़ने लगी थी। आसमान में चाँद भी निकल आया। तारे टिमटिमा रहे थे। मन्द-मन्द शीत वायु बह रही थी। गोविंद इस दिन की सब क्रूरताओं को खैरबाद कर चुका था। वह बरामदे में टहल रहा था और कभी-कभी बाहर चाँदनी रात के स्निग्ध वातावरण पर भी दृष्टिपात कर लेता था।

इन्दु अन्दर कमरे में अकेली सजी सेज पर मुंह नीचे को किये, उकडू से बैठी थी। उसका दिल घबराया हुआ था। उस कमरे में कहाँ क्या रखा है, उसे उसकी कोई खबर न थी। वह कुछ डर सी रही थी। इसका क्या कारण है इसको वह स्पष्ट रूप से समझ नहीं सकी थी। परन्तु इतनी बात अवश्य थी कि उसके हृदय की गति बढ़ गई थी। साँस ऐसे चल रहा था जैसे धौंकनी चल रही हो। उसको कमरे की सजावट व महक से कुछ सरोकार ही न था। बाहर जरा सी आहट हुई। वह और दुबक कर बैठ गई। मगर उधर से कोई कुत्ता गुजर गया था।

इन्दु हजार यत्न करती रही कि उसका हृदय नित्य की भाँति चले और साँस भी वह नित्य की भाँति खींचे और छोड़े। परन्तु उसके सब प्रयत्न विफल ही रहे थे।

रात काफी बीत गई थी। अचानक गोविन्द ने कमरे में प्रवेश किया। इन्दु मूर्तिवत बैठी रही। उसके हृदय को गति और भी तेज हो गई। गोविन्द आकर पास बैठ गया। वह अनुभवी था। जानता था कि उस लड़की का सह-शैया में प्रथम प्रवेश है। वह कुछ सांत्वना देता हुआ इन्दु की पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला, "आराम करो, आखिर

तुम ने आज अपना घर बार छोड़ा है, अपने सगे सम्बन्धियों से जुदा हुई हो, तुम्हारी बैचेनी स्वभाविक है।

इस सहृदयता से इन्दु के मन में कुछ शाँति का संचार हुआ।

वह अत्यन्त मृदु स्वर में बोली, "आप भी सारे दिन इतनी दौड़-धूप करते रहे। सारे काम का बोझ अकेले आपके सिर पर था।

"इसकी तुम कोई परवाह न करो। पुरुषों में ऐसी शगती होती है और होनी भी चाहिये। फिर ऐसे अवसर कोई रोज थोड़े ही आते हैं।

इन्दु अपने पति के बलिष्ट होने की सूचना पाकर प्रसन्न हुई। वह चुपचाप ज्यों की त्यों बैठी रही। गोविन्द ने हाथ बढ़ा कर उसका घूँघट उठा लिया। देखते ही बोला, "अहा, कैसी प्यारी सूरत है तुम्हारी। इसे देखकर तो मेरी महीनों के सफर की थकान भी क्षण में लुपत हो जायेगी।"

इन्दु लज्जा से भरी जा रही थी। वह चुपचाप नीचे नीचे को देखती हुई बैठी रही। गोविन्द ने और पास सटकर उसका मुँह ऊपर को उठाया और उसके मधुर होटों पर एक चुम्बन अंकित किया। इन्दु स्तब्ध थी। आज उसके हाथ गोविन्द के गले में नहीं झूले। उसे अजय के उस चिर अमर चुम्बन की याद आ गई। उसने अपने को कुछ दूषित सा अनुभव किया। तब उसने अपने मन को दुतकारा...छि...वह मेरी भूल थी। मेरे पति मेरे पास हैं। वह मेरा पति न था। मुझे ऐसे विचारों मे दूर रहना चाहिए। इतने में गोविन्द ने एक और चुम्बन अंकति किया। इन्दु ने यत्न से अपनी बाहें उसके गले में डाल दीं। गोविन्द को उत्तेजना हो गई। उसने इन्दु को अंक पाश में भर लिया फिर चुम्बन और गूढ़ालिंगन की क्रिया की आवृत्ति और पुनरावृत्ति चलती रही। इन्दु के फूल से हाथ उसकी पीठ पर सरक रहे थे। विलास और वासना के इस सागर में वह मस्त मछली की तरह बेपरवाह विचरता रहा। रात बीत गई। सुबह के पाँच ही बजे होंगे कि

इन्दु उठी। उसने कोटी गले में डालने को बाहें ऊपर उठाईं। गोविन्द की आँख खुली, उससे यह दृश्य देखा न गया। श्रृंगारिकता का सागर एक बार और उमड़ आया। उसने इन्दु को फिर अंक में भर लिया, इन्दु को आत्मसमर्पण करना पड़ा।

कुछ देर बाद इन्दु फिर उठ खड़ी हुई। कपड़े डाल कर बाल सँवारे और रसोई घर में पहुँच गई। बुढ़िया सास पहले ही वहां उपस्थित थी। इन्दु ने रसोई घर के चारों ओर दृष्टि डाली। सास को कहा, "माता जी आप विश्राम करें, यह काम मैं स्वयं कर लूंगी। कृपा करके एकबार मुझे बता दे कि कहाँ कहाँ क्या वस्तुएँ रखी हैं।"

सास खुश हुई। आखिर लम्बे अर्से के बाद यह समय आया था कि उसको भी छुट्टी मिलेगी। परन्तु रसोई से जाने को उसका दिल भी न करता था। और फिर वहाँ से जाकर करती भी क्या। रसोई खाने में उसका मन तो लगा रहता था। अन्यथा उसका कोई साथी न था। इन्दु के अपने घर में भी केवल उसकी माँ थी और यहाँ भी उसी जैसी बुढ़िया मिली। उसने उसे माँ के ही समान समझा और उसी प्रकार उसकी सेवा करने मे अपना सौभाग्य माना।

रसोई में अब तक बुढ़िया सास का निरंकुश शासन चलता था। बुढ़िया की उम्र इतनी होते हुए भी रसोई घर का प्रबन्ध इतना अच्छा न था कि जिसे प्रशंमनीय कहा जा सके। रसोई घर में जहाँ तहाँ आलू, प्याज और लहसुन के छिलके बिखरे रहते थे। सब्जी काटने का चाकू आज इस कोने में है तो कल उस कोने में। उधर कड़ाही में तड़के का घी जलता था और इधर बुढ़िया प्याज काटने के लिए चाकू ढूँढती थी। न मिलने पर कभी कभी गोविन्द को आवाज़ मारती थी कि चाकू कहाँ पड़ा है। तब कहीं हर बर्तन, छाबड़ी, प्लेट, कटोरी, चिमटा, थाली वगैरा को इधर से उधर फेंकने और पलटने के पश्चात चाकू मिलता था। जो औरतें रसोई की चीजों को ठीक तरह निश्चित स्थानों पर नहीं रखतीं उनके यहां ऐसा ही देखा जाता है। इसके अतिरिक्त बुढ़िया

ने अपनी फटी सलवारों के टुकड़ों को तवा परात वगैरा पूँछने के लिए बना रखा था। और वे भी जब वक्त पर न मिलते तो अपने दोपट्टे के छोर से ही काम निकाल लेती थी। दूध को कपड़े से छानती ज़रूर थी। मगर उसको छानने के लिये भी वही रसोईघर के कपड़े इस्तेमाल करती थी। जिससे छन कर दूध का रंग चाय जैसा बन जाता था। रोटियाँ बना कर खुली रखना उसे पसन्द न था। तो उसके लिये इन्हीं में से एक को प्रयोग में लाती थी। घर में जब चावल पकते थे तो उस का फालतू पानी निंतार दिया जाता था, फिर जब दोबारा पतीली को आग पर रखती थी तो उसका ढक्कन उतार कर नीचे रख देती थी। इस ढक्कन में अन्दर की तरफ जो पीछ लगी रहती थी वह रसोईघर के काफी कचरे को उठा लेती थी और तब बुढ़िया इस ढक्कन को वैसे ही ढक देती थी। जब गोविन्द चावल में कुछ कचरे की शिकायत करता तो बुढ़िया अपनी अज्ञानता को जताती हुई हैरानी ज़ाहिर करती थी। घर में जब कद्दू सब्जी के लिये आता था और यदि उसमें से आधा हिस्सा बच जाता था तो वह कटा हुआ भाग यूँ ही खुला हुआ एक तरफ पड़ा रहता था। उस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती थीं, मगर सास जी को इसकी कोई परवाह न होती थी। खाद्यपदार्थों को ढक कर रखने की आदत अभी उनमें न पनपी थी। कभी कोई वस्तु ढक दी तो वाह वाह और यदि भूल गई तो चाहे दाल भाजी ही हो खुली ही पड़ी रहती थी।

अंगीठी की बात भी काफी दिलचस्प है। जब तक अंगीठी तेज़ जलती थी तो उस पर फुलके भेड़िये की खाल की तरह दागदार निकलते थे। मगर जब अंगीठी ठण्डी होने लगती थी तो बुढ़िया को पहले ध्यान ही न रहता था। जब वह बुझाने लग जाती थी दौड़कर उसमें कोयले झौंक देती थी। उससे अंगीठी जल्दी ही फिर से बुझ जाती थी। तब अगर गोविन्द को दफ्तर जाने में देर हो जाती तो बुढ़िया उसमें ऊपर से लकड़ी या गोहे के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर

डालती थी और उससे रोटियाँ पका लेती थी। इस प्रकार रोज़ के धुएं से दीवार पर लगे चूने पर काफी काली चमकीली परतें चढ़ गई थीं।

बुढ़िया बर्तन खूब माँजती थी। उसमें चाहे वक्त बहुत लग जाता था। मगर राख को बार बार बर्तनों में घिसाती रहती थी, जिससे बर्तन चमकते खूब थे। हाँ उसमें भी वही सनवार या दुाट्टे का टुकड़ा काम में लाती थी। और फिर बर्तनों को रखने का भी वही ढंग था जैसे हमने चाकू की बात सुनाई है। प्लेटों से बुढ़िया को बड़ी चिढ़ थी। मगर जब गोविन्द की नई-नई नौकरी लगी थी वह कुछ प्लेटें और प्याले ले आया था। बुढ़िया इनको भी खूब मल-मल कर साफ किया करती थी। मगर धोने के बाद जिस सुविधा से वह धातु के बर्तनों को एक ओर फेंक देती थी, ऐसा प्लेट प्यालों से सम्भव न था। इससे उसे बड़ी बेचैनी और क्रोध सा आता था जिससे उसे अपने पेट में कुछ अव्यवस्था का सा अनुभव होता था।

रसोईखाने में बाल्टी, चिरमची, थाली या लोटे में से कोई न कोई दरवाजे और गुसलखाने के रास्ते में पड़े रहते थे। जिससे यदि रसोई में जाना हो या गुसलखाने में जाना होता तो आपको 'ओव्स्टैक्लै रेस का अच्छा अभ्यास करना पड़ जाता था। क्योंकि कोई भी कदम सीधा आगे बढ़ाना मुश्किल होता था।

इसके अतिरिक्त रसोईखाने में लकड़ी के पटड़े रखे थे। उन पर कुछ हो या न हो, इनका नित्य अशनान अवश्य होता था जिससे वे काफी सड़ गये थे और उसमें से सड़ने की बू आती थी। इसी प्रकार रसोईघर में टीन के जो बर्तन डब्बे वगैरा रहते थे उन पर गीला कपड़ा बरसातों में भी जरूर फेरा जाता था। जब तक उनका पालिस ठीक रहता तब तक वे खूब चमकते थे। मगर जूं ही पालिश छः आठ दिनों की रगड़ के बाद उतर जाता था तब उनमें जंग की परतें पड़ी रहती थीं। मगर बुढ़िया साफ रोज़ करती थी। इसके अतिरिक्त उसे कपड़े भी धोने पड़ते थे। इस प्रकार वह बिचारी शाम को १०० मील के

सफर की थकान महसूस करती थी। मगर आदतें उसकी वैसे की वैसी थीं। उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं देखा गया।

एक और बात बुढ़िया की उल्लेखनीय है। वह घर के अन्दर रसोईखाने में, कमरे में या गुसलखाने में सब जगह केवल लकड़ी की खड़ाओं पहन कर चला करती थी। इससे गुसलखाने मे दो चार बार वह बुरी तरह गिर भी पड़ी थी। उसके नितम्भों में भारी चोटों से उसे कई दिनों बिस्तर पर पड़े रहना पड़ा। इससे गोविन्द ने उसके लिये रब्बड़ के चप्पल भी ला दिये थे। मगर बुढ़िया फिर भी खड़ावें ही डाला करती थी।

रसोईघर में कौन कौन से मसाले प्रयोग में लाये जाते हैं उन सब का नमूना आप बुढ़िया की कमीज़ पर भली भाँति देख सकते थे। गोविन्द की एक फटी हुई पेंट रसोईघर के दरवाजे के पास पूरी-पूरी वर्षों से ज्यों की त्यों लटक रही थी। उसको वहाँ से किसी ने अब तक उठाया या फेंका नहीं था।

इन्दु ने दो-चार दिनों में ये सारी बातें देख लीं। उसमें नई उमंग थी। नया जोश था और नया शौक था। वह गृहस्थ को एक अच्छे ढंग से चलाना चाहती थी। वह पढ़ी लिखी थी। वह एक सुशिक्षित नारी के घर को एक आदर्श स्वरूप बनाना चाहती थी। इसने रसोई-घर की सब वस्तुओं के स्थान निश्चित कर दिये। जहाँ कील की आवश्यकता थी वहाँ कील लगा दी। जहाँ रस्सी की आवश्यकता थी वहाँ रस्सी बाँध दी। बुढ़िया चीज़ों को जहाँ तहाँ फेंक भी देती थी तो इन्दु फ़ौरन उन्हें उठा कर उपयुक्त स्थानों पर रख देती थी। अब रसोईघर से 'औब्स्टैकल रेस' का प्रबन्ध खतम हो गया और चक्कर काटे बिना ही या टांग को ऊँचा उठाये बिना ही आप सीधे गुसलखाने में पहुँच सकते थे। दरवाजे पर लटकी हुई उसे फटी पैंट को भी देश निकाला मिल गया।। बर्तन माँजन के लिये घास और दूध छानने के लिये खद्दर के टुकड़े प्रयोग में लाये जाने लगे। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से सुधार

इन्दु ने रसोईघर में कर दिये जिससे यह स्थान स्वच्छ, आकर्षक और सुव्यवस्थित दिखाई देने लगा।

वैसे इन्दु को घर में रसोई का काम करने का अभ्यास अधिक नहीं था। लेकिन तो भी उसने अपने यत्नों से शीघ्र ही सारा काम काज अच्छी तरह चलाना आरम्भ कर दिया था।

इसी प्रकार उसने घर के दूसरे कमरों को भी सुव्यवस्थित ढंग से सजा दिया था। इनमें चाहे कोई बड़ा फरनीचर या दूसरा सजावट का सामान विशेष न था, तो भी वस्तुओं को ढंग से रखने से यह घर प्रिय लगने लगा था। चूहों की कतरनों का कचरा अब कहीं दिखाई न देता था।

रसोईघर के काम के अतिरिक्त इन्दु गोविन्द के कपड़ों में प्रेम करती थी। कहीं कोई बटन टूटा हो उसे लगाती थी। गोविन्द के बूटों में पालिश भी कर देती थी। जिस समय गोविन्द दफ्तर जाने लगता तो प्रसन्न मुद्रा में उसको विदा करने आती। उसके कोट को कन्धे पर रखती। बूट लाकर सामने पैर के पास रख देती। रात को जब गोविंद घर आता तो इन्दु प्रसन्न मुद्रा से उसका स्वागत करने के लिये पहुँच जाती। यहाँ तक कि उसके बैठते ही वह पैरों के पास बैठ जाती और अपने स्वामी के बूट खोलने लग जाती। वह बड़ी श्रद्धा और प्रेम से सारा कार्य करती थी और मन ही मन खुश होती थी। उसे यह सब कुछ अच्छा लगता था।

गोविन्द ने इस श्रद्धामई सेवा को नीच नौकरानी का स्वभाव समझा। उसने मुख से अथवा भावाकृति से कभी भी इस निष्काम सेवा की आदर न की। मगर इन्दु की प्रशंसा की इच्छा न थी। उसे तो अपने जीवन साथी का अधिक से अधिक कार्य करने अथवा उसका हाथ बटाने में आनन्द अनुभव होता था। वह इसमें नीचता नहीं बड़प्पन समझती थी। वह सेवा करती रही।

# विवाहिता नारी

अजय कलकत्ते की सैरें कर रहा था। इन्दु के विवाह को हुए सप्ताह हो चुका था कि उसे अजय का पत्र प्राप्त हुआ। यह पत्र पहले उसके घर के पते पर आया था परन्तु उसमें काट कर किसी ने उसके सुसराल का पता लिख दिया था। पत्र दिन के समय आया जब कि वह इन्दु को मिला। लिफाफे की लिखाई से ही यह जान गई कि पत्र अजय का है। उसका मन उस पत्र की अन्तर्वस्तु को देखने के लिये उतावला सा होने लगा। वह अधीर हो उठी। वह पत्र को लेकर अन्दर घर को दौड़ गई। आने कमरे में गई। इधर-उधर दृष्टि डाली, वहाँ कोई न था। तब उसने जल्दी-जल्दी लिफाफे को फाड़ डाला और पत्र को पढ़ने लगी। उसमें लिखा था :—

कलकत्ता
पोस्टबोक्स नम्बर ८४०
१५ जुलाई, १९५७।

प्रिय इन्दु,

काश इस भ्रमण में तुम मेरे साथ होतीं और इस सैर के नये-नये दृश्य अपनी आँखों से देखतीं। मगर कोई बात नहीं। मैं आकर तुम्हें एक-एक बात सुना दूंगा। फिर कभी अवसर मिलेगा तो तुम्हें इन स्थानों में घुमा भी लाऊंगा। सुनता हूँ अभी रिजल्ट निकलने में कुछ दिन शेष हैं। उससे पहले ही मैं पहुँच जाऊंगा और तुम्हारे जिस मधुर मुख के दर्शन के लिये आँखें तरस रही हैं जी भर कर उसे देखूंगा। तुम्हारे

लिये मैं एक सुन्दर उपहार भी ला रहा हूँ, मगर अभी नहीं बताऊँगा कि वह क्या है। देखोगी तो प्रसन्न हो जाओगी।

यदि तुम्हें किसी वस्तु विशेष की आवश्यकता हो तो अपने मित्र को निसंकोच लिख भेजो।

तुम्हारा
अजय

इन्दु पर इस पत्र का मिश्रित-सा प्रभाव पड़ा। इसे पढ़कर कभी वह प्रसन्न हुई और कभी खिन्न। अब इस पत्र का क्या उत्तर लिखे उसे समझ में नहीं आ रहा था। उसका सर चकरा रहा था। उसने स्थिति को समझने का यत्न किया। वह सोचने लगी, "अजय का मेरे लिये इस तरह का पत्र लिखना कहाँ तक उचित है। मैं उसकी क्या होती हूँ। ऐसा पत्र तो मुझे केवल मेरा पति ही लिख सकता है। मैं उसको साफ-साफ लिख देती हूँ कि ऐसे पत्र न लिखा करें। मगर मुझे क्या पड़ी है" उसने अगले ही क्षण सोचा, "कि उसे पत्र लिखती फिरूँ। जब वह मेरा कुछ होता ही नहीं तो उसे पत्र क्यों लिखूँ। जवाब ही नहीं देती। अपने आप चुप हो जायेगा। माना कि वह ज्ञानी है। विद्वान है। सब कुछ है। मगर मेरे प्रति इस प्रकार का पत्र लिखने का उसे कोई अधिकार नहीं है। ठीक है उससे पत्र व्यवहार रखना गलती है।' इतने ही में इन्दु का ख्याल दूसरी ओर पलट गया। उसे स्मरण हो आया, "वह मेरे लिये उपहार ला रहा है। क्या उपहार होगा। कुछ भी हो उसे मेरी कितनी चिन्ता है। वह बिचारा सच्चा है। उसने यह पत्र अनजाने में लिखा है। उसे क्या मालूम है कि मैं अब किसी की विवाहिता पत्नी हूँ। मैं खामखाह उसे कोस रही हूँ। एक दफा उसे पता लग जायेगा तो वह इतना भद्र व्यक्ति है कि स्वयं ही सारी स्थिति को देखते हुए ऐसे पत्रादि नहीं लिखा करेगा। मगर इस पत्र का क्या उत्तर दूँ। क्या मैं स्वयं उसे लिख भेजूँ कि मैंने तुम्हारा सर्वस्व लूटा दिया है। क्या मैं उसे लिख भेजूँ कि मैंने जो कुछ तुम्हारे साथ किया वह सब

एक अभिनय मात्र था। अब नाटक समाप्त हो गया है। इसलिये हमारा तुम्हारा नाटकीय सम्बन्ध भी समाप्त हुआ।" इन्दु को आत्म-ग्लानी हो रही थी। उसकी सारी देह एक अजीब सी सिहरन से काँप उठी। "पत्र का उत्तर मैं नहीं भेजती। मेरे पास लिखने को है ही क्या। मैं अपने ही हाथों ऐसी अशुभ सूचना नहीं भेजूँगी जिससे उसे आघात पहुँचे। वह समय आने पर स्वयं ही जान जायेगा।" इन्दु ने पत्र का कोई उत्तर न भेजा।

समय बीतता गया। गोविंद इन्दु के रूप और यौवन का खूब आनन्द लूटता रहा। इन्दु भी सन्तुष्ट थी। उसे विवाह में माँ से कई सूट मिले थे। कपड़ों की उसे कमी नहीं महसूस हुई। उधर गोविंद अपनी पहली पत्नी के वस्त्र एक-एक करके उसे भेंट करता रहा। वह अभी भोली थी। सोचती, "इन्हें मेरा कितना फिक्र है। हर हफ्ते, दूसरे हफ्ते मेरे लिये कोई न कोई वस्त्र ले आते हैं। इन्दु गरीब घर की बेटी थी। इसलिये थोड़ा मिलने पर उसे बहुत संतोष हो जाता था। वह सरल थी इसलिए किसी प्रकार की चालाकी या छल-कपट को वह न समझती थी।

अजय को अपने पत्र का उत्तर नहीं मिला। इसकी उसे बहुत चिन्ता नहीं हुई। क्योंकि उसने सोचा कि मेरा पत्र देर में मिला होगा और फिर मैंने यहाँ से चला जाना था। इसीलिये उत्तर नहीं भेजा होगा। चलो रिजल्ट निकलने पर स्वयं उससे भेंट करूँगा। दो चार दिनों के बाद अजय वापिस अपने नगर पहुँच गया।

घर पहुँचने से दो दिनों बाद परीक्षा का परिणाम निकल आया। इन्दु और अजय दोनों पास थे। अजय का फस्ट डिवीजन था और इन्दु का सैकिंड। अजय की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह अखबार को देखते ही दौड़ा-दौड़ा माँ के पास पहुँचा। "माँ मैं पास हो गया हूँ। इन्दु भी पास हो गई।" माँ ने खुश होकर पूछा, "कौन इन्दु रे ?"

"माँ वही इन्दु, मेरी क्लास फैलो, मेरी सखी। वह यहाँ भी एक

दो बार आई थी। बड़ी होशियार है माँ वह।"

"वही जो बड़ी सुन्दर सी लड़की यहाँ आती थी।" माँ ने प्रश्नात्मक तथा व्यंगात्मक ढंग से मुस्कराते हुए कहा।

"हाँ वही।"

माँ ने अपना ट्रंक खोला। उसमें से पर्स निकाला और सौ रुपये का नोट अजय को देते हुए कहा, "बेटा ले, जाकर इस खुशी में मिठाइयाँ बाँट।"

अजय ने अखबार को उलटा सीधा लपेट कर बगल में दबा लिया और बाज़ार को चल दिया। दो सेर मिठाइयाँ बँधवाई और घर लौटा। काउच पर बैठते ही सीताराम ने कमरे में प्रवेश किया। अजय ने लापरवाही के से भाव से पूछा, "सीताराम तुम्हारा ईश्वर कैसा है?"

सीताराम बंगाल के बहुत सारे मंदिरों में घूम आया था। कलकत्ता की काली को भी वह देख आया था। बोला, "बाबू जी, शगती की उपासना ही ठीक ईश्वर की उपासना है। वह दस भुजा वाली सरब-शगतीमान है। और बाबू जी वह कविता और संगीत को जानती है। उसके एक हाथ में वीणा होती है।

अजय ने पाँच रुपये निकाल कर सीताराम को दिये—कहा, "जाओ, इसकी मिठाइयाँ खा लेना। और अपनी श्रीमति शक्तिदेवी को भी देना। मैं पास हुआ हूँ।"

सीताराम ने एक उँगली उठाते हुए कहा, "तो बाबू जी आप भी अपनी उस श्रीमति के लिये देना।" सीताराम का इशारा इन्दु की ओर था। अजय समझ गया। मगर तब भी उसने पूछा, "कौन श्रीमति रे?"

"वही श्रीमति जो आपके साथ यहाँ आती थी।"

"वह तो खुद भी पास हो गई है। मगर मैं तब भी वहाँ जरूर जाऊँगा। यह देख उसके लिये मिठाइयाँ लाया हूँ।"

सीताराम दाँत निकाल कर मुस्कुराता और गर्दन हिलाता हुआ चला गया।

अजय मिठाइयों का लिफाफा और अखबार उठाकर झूमता-झामता इन्दु के मायके की ओर चल पड़ा। जब वहाँ पहुँचा तो बुढ़िया को नमस्कार किया। बुढ़िया उदास सी खाट पर बैठी दाल छाँट रही थी। अजय ने पूछा, इन्दु कहाँ है ?"

बुढ़िया ने स्टूल की ओर इशारा करते हुए कहा, "बेटा, बैठ जाओ। इन्दु से क्या काम है ?"

अजय बीच के दरवाज़े से अन्दर देख रहा था और उधर को ही नजर रखते हुए बोला, "वह पास हो गई है और सैकिड डिवीजन में। मेरी क्लासफैलो है। मैं उसको बधाई देने आया हूँ।"

"तब तुम उसकी शादी में क्यों नहीं आये ?" बूढ़िया ने पूछा।

अजय ने फिर भी खोज भरी दृष्टि को इधर-उधर दौड़ाते हुए अन्यमनस्क सा होकर कहा, "किसकी ?" इतना कहते ही वह बुढ़िया की ओर घूर-घूर कर देखने लगा।

बुढ़िया ने दाल में से कोई कंकर एक तरफ फैंकते हुए कहा, 'इन्दु की।"

अजय को पहले तो लगा कि शायद वह स्वप्न देख रहा है। और जो कुछ वह देख रहा था। वह सब कुछ झूठ है, मिथ्या भाषण है। उसने मिठाई के लफाफे को नीचे रख दिया। तब कुछ ठहर कर बोला, "उसकी शादी कहाँ हुई। मुझे तो कोई खबर नहीं मिली।"

"बेटा उसकी शादी एक अफसर के साथ हो गई है। कुछ अवसर ही ऐसा जान पड़ा कि सब काम जल्दी-जल्दी से सम्पन्न करना पड़ा। और शायद इसी से तुम्हें सूचना नहीं मिली होगी। मगर पुत्र मुझे तो इस बात की खुशी है कि उसे अच्छा घर मिल गया। मेरे सिर से एक भारी बोझ उतर गया। अब वह सुखी रहेगी।"

अजय सर्वनाश की सूचना पा चुका था। अब वह बुढ़िया के

शेष वार्तालाप को न सुनना चाहता था। और न यह सुनने के लिए अपने अन्दर सामर्थ्य ही पा रहा था। वह मिठाइयों को वहाँ रखकर बुढ़िया को नमस्कार करके वहाँ से अविलम्ब चला आया। वह घर की ओर बढ़ा चला आ रहा था मगर उसको अपना एक-एक कदम सौ-सौ मन का महसूस हो रहा था। वह भारी नशे से लड़खड़ा रहा था। उसका गला सूख गया था और वह खाली घूंट भर रहा था। उसके शरीर से ठण्डा पानी चू रहा था। वह थोड़ी दूर चलकर सड़क की एक ओर पत्थर के सहारे बैठ गया। कुछ साहस बटोर कर फिर आगे बढ़ा। तब वह अपने आपसे बोला, "यह जादू सा क्या हो गया। क्या किसी ने कोई षड़यन्त्र किया। क्या मुझे यहाँ से बाहर भेजने में किसी की चाल थी। नहीं...मैं तो स्वयं ही गया था। मुझे किसी ने यहाँ से जाने को न कहा था। तब क्या इन्दु ने विश्वासघात किया। क्या वह मुझसे नाटक खेल रही थी। या मुझे बेवकूफ बना रही थी। मेरा मजाक उड़ा रही थी। नहीं इन्दु कदापि ऐसा न कर सकती थी। वह सख्त हृदय की लड़की है। छल कपट उससे कोसों दूर है। दो सालों से हम एक दूसरे को जानते हैं। तब मैं उसको इतना भी नहीं समझ सका। क्या मैं निरा मूर्ख हूँ। उसे तो किसी बात का जरा भी सन्देह होता तो झट मेरे पास आ जाती थी। हम दोनों चर्चा करके हर विषय की तह पर जाते थे। तब इस विषय में उसने मुझसे बात तक नहीं की, यह क्यों? क्या वह मुझसे मिल न सकती थी। और यदि मिलना कठिन था तो क्या वह चिट्ठी न लिख सकती थी। मगर मैं घर पर न था, वह मुझे मिलती कहाँ। मैंने उसे अपना नया पता नहीं दिया था। तब वह चिट्ठी कहाँ को लिखती। मेरे पत्र का उत्तर भी मुझे इसीलिए नहीं मिला। उसका क्या दोष है। कसूरवार मैं हूँ। परन्तु इतनी बात तो हो सकती थी कि वह कुछ दिनों टाल देती। मैं कौन सा उम्र भर के लिए कहीं चला गया था। ऐसी भी क्या मजबूरी होगी कि मुजरिम की तरह उसे फौरन हा बाँध लिया गया हो। उस दिन तो वह इस

बात पर राजी हो गई थी कि जल्दी भी क्या है। तब जल्दी किसने की क्या उसे सामाजिक कारा का बन्दी बनाया गया।" यह सब क्या हुआ अजय की समझ में कछ न आया। केवल वह यही समझ सका कि जो उसकी इन्दु थी या जिसको वह अपनी समझ बैठा था वह अब किसी और की है। वह अत्यन्त ढीली चाल से चल रहा था। मगर तब भी उसके शरीर से पसीना ही पसीना टपक रहा था। उसका मुख एकदम पीला पड़ गया था। जबान तालू से जा लगी थी। "मेरा घर जल गया और मुझे खबर तक न हुई मुझे पता तो करना चाहिए कि यह आग क्यों लगी। किसी ने जान बूझ कर लगाई या स्वयं लगी। क्या कोई मेरी बीवी को ही हर ले गया। क्या वह मेरी बीवी न थी क्योंकि मैंने अग्नि को साक्षी रखकर उसका पाणिग्रहण न किया था। क्या तभी वह मेरी बीबी बन सकती थी। मैंने चर्च में जाकर पादरी के सन्मुख उसको ग्रहण न किया था। इसलिए वह मेरी न थी। मैंने सिविल मैरिज से उसको न अपनाया था, क्या इसलिए वह मेरी न हो सकती थी। मगर वह मुझसे प्रेम करती थी मैं उसको चाहता था वह भी मुझको चाहती थी। तब ये आग के गिर्द के फेरे, चर्च अथवा कचहरी के चक्र ही क्यों आवश्यक हैं। अजय समाज को घृणित दृष्टि से देख रहा था।

"मैं मानव हूँ। मुझे कुछ यत्न करना चाहिए। हाथ पर हाथ रख कर बैठने से काम नहीं बनेगा क्या जाने वह बिचारी किन मजबरियों में फँसी हो वह किसी दुष्ट की चालों का शिकार न हो गई हो। उसे मेरी सहायता की आवश्यकता हो सकती है। तब वह मित्र ही क्या है जो मुसीबत में काम न आये। अजय ने अपनी दोनों मुट्ठियां जोर से भींचीं और कहा, "इन्दु तुम घबराओ नहीं। मैं अवश्य पता करूँगा कि मामला क्या है। तुम्हारा मधुर स्वप्न किसने तोड़ा। तुम पर किसकी कुदृष्टि पड़ी। तुम्हारी सब मजबूरियों से मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। ...मेरे पत्र का उसने कोई उत्तर भी सम्भवतः इसीलिए नहीं दिया कि

वह किसी मुश्किल में फँसी है। अच्छा मैं उसे एक और पत्र लिखता हूँ इतने में ही उसने अपने घर में प्रवेश किया। कुर्सी पर बैठते ही उसने लैटर पैड उठाया और पत्र लिखने लगा। इन्दु अब उसकी न थी। जब वह पत्र किस प्रकार से सम्बोधन करे यह उसकी समझ में न आ रहा था। वह फिर सोच में पड़ गया। "अब वह मेरी प्रेमिका न सही सहेली तो है। मैं पहले की तरह लिखूँगा। इसमें दोष क्या है ?" उसने पहले की तरह ही पत्र का आरम्भ व अन्त किया। पत्र लिखकर उसने नये पते पर डाल दिया।

अगले दिन जब पत्र इन्दु के घर पर पहुँचा उस दिन गोविन्द घर पर ही था। पोस्टमैन से वह पत्र उसने ले लिया। इन्दु घर के काम में लगी थी। गोविन्द ने पत्र खोल कर देखा...लिखा था—

प्रिय इन्दु।

मैं कलकत्ते से आ गया हूँ। तुम्हारे घर गया था परन्तु तुम्हे वहाँ न पाया। इसलिए इस पत्र द्वारा ए० एम० की परीक्षा में सफल होने के लिए बहुत-बहुत बधाइयाँ भेज रहा हूँ। मुझे तुम्हारे विवाह का भी वहीं पर पता चला। यदि यह तुम्हारी इच्छा के अनुसार हुआ है तो उसके लिए भी बहुत बधाइयाँ हों इतनी आशा है कि तुम मुझे भूल न गई होगी।

मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखना।

तुम्हारा

अजय

अजय और इन्दु की घनिष्ठ मित्रता का गोविन्द को कालिज के दिनों से पता था। इससे अधिक वह कुछ न जानता था। इस पत्र का अधिकतर भाग तो उसे बुरा नहीं लगा। परन्तु इसका प्रारम्भ और अन्त उसे खाए जा रहा था। उसने इन्दु को बुला कर पत्र उसे दिया। पत्र देखते ही वह समझ गई कि अजय की लिखाई है। वह घबरा गई। इसी घबराहट में उसने यह पत्र पढ़ डाला। वह पत्र लपेट रही

थी। गोविन्द ने कहा, "मैं जानता हूँ कि वह तुम्हारा कलासफैलो और कालिज का मित्र है। मगर तुम अब कालिज की छोकरी नहीं हो। एक जिम्मेदार आदमी की बीवी हो। ये लडकपन की सी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं। क्या किसी की बीबी को इस ढंग से पत्र लिखा जाता है। यही तुम्हारी पढाई का लाभ है। यही कुछ वहाँ सिखाया जाता था। इन्दु चुपचाप खड़ी थी।

"हमारे बजुर्ग सच ही कहते हैं कि आजकल की पढाई बिल्कुल बेकार है। लड़कियाँ पढ़ना सीखती हैं तो केवल अपने दोस्तों को पत्र लिखने के लिए। गोविन्द आवेश में था। वह चालाक था परन्तु बुद्धिमान नहीं था। वह यह न सोच सका कि कालिज की पढ़ाई का उसमें क्या दोष है। जिसको पढना आता है। वह फिर रामचरितमानस पढ़े या कोकशास्त्र, यह उसकी अपनी रुचि और वातावरण पर निर्भर करता है।

इन्दु महसूस कर रही थी कि सचमुच उसको इस प्रकार से पत्र नहीं लिखना चाहिए था। यदि बधाई भेजनी ही थी तो पत्र का प्रारम्भ और अन्त और तरीके पर भी हो सकता था। उसने अपने पति के समीप जाकर कहा, "आप ठीक कहते हैं। बात यह है कि उसको पहले तो यह भी पता न था कि मेरा विवाह भी हो चुका है।"

"अब तो पता था।" गोविन्द ने कड़क कर कहा।

इन्दु और भी विनम्र होकर बोली, "तब मैं उसे लिख भेजती हूं कि इस प्रकार के पत्र न लिखा करे।

"इस प्रकार के नहीं बल्कि यह लिख दे कि वह पत्र ही न लिखा करे। यदि फिर उसका पत्र आया तो मुझसे बुरा कोई न होगा।

इन्दु काँप रही थी। "वह लिख कर डाल दे तो मैं उसको कैसे रोक सकती हूँ। अलबत्ता में वैसे ही लिख देती हूँ।"

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।"

इन्दु ने झटपट कलम उठाया और चिट्ठी लिख दी। लिखा—

अजय।

आपके पत्र मिले। मुझे इस बात का बड़ा शोक है कि आपने एक परस्त्री को ठीक प्रकार से पत्र भी न लिखा। यह आपको शोभा नहीं देता। अब मेरी यह विनती है कि मुझे आगे से कोई पत्र ही न लिखें मैं पराये घर की नारी हूँ। किसी पर-पुरुष से इस प्रकार का पत्र व्यवहार सर्वथा अनुचित है।

एम० ए० में सफलता के लिए आपको बधाई हो।

इन्दु

गोविन्द को दफतर में अपने क्लर्कों के पत्र-प्रारूपों ड्राफटस) की काँट-छाँट करने का अभ्यास था। अभ्यास स्वभाव में उतर आता है। इस पत्र की पहली लाइन देखते ही उसने कहा, "वह बड़ा नवाब है जिसको 'आप करके सम्बोधन किया जाये। यहाँ पर तुम्हारे लिखो अगले ही क्षण उसे तुम्हारे शब्द का महत्व कुछ और मालूम हुआ। बोला, 'नहीं—यही रहने दो 'तुम्हारा शब्द उसे और भी परीय लगेगा पहले वाक्य को पूरा पढ़ते ही वह फिर बोल उठा, "अच्छा तो तुम्हें और भी पत्र आते रहे हैं। बेवकूफ, निरलज्ज कहीं की।" इतना कहते-कहते उसने वह चिट्ठी इन्दु के मुँह पर दे मारी। "नीच घर की है न।"

इन्दु के विवाहिता जीवन में यह पहला अवसर था जब उसे अपने स्वामी से ये अपशब्द सुनने पड़े। कालिज में वह योग्य थी और घर में लज्जाशील, शिष्ट और प्रगतिशील समाज में वह समानता और आदर की दृष्टि में देखी जाती थी। परन्तु उसके सुसराल में उसके पति ने आज बेवकूफ निर्लज और नीच घर की सन्तान के विशेषण दिये। यह सब इन्दु को बहुत अप्रिय लगा। मगर उसने अपने आपको कसूरवार भी समझा। इसलिए उसने चुपचाप मन मसोस लिया और पत्र को लिफाफे में बन्दकर दिया। वह लैटरबक्स की ओर चल दी और गोविन्द दाँत पीसता रहा।

अजय को स्वप्न में भी इन्दु से शुष्क उत्तर की आशा न थी। परन्तु ये परिस्थितियाँ बहुत सी असम्भव बातों को भी सम्भव बना देती हैं।

जो आस्तिक होते हैं अथवा भाग्यचक्र पर आस्था रखते हैं उनके लिए ऐसी परिस्थितियों को टालना आसान होता है। वे सब परिणामों को झटपट ईश्वर की मर्जी या प्रारब्ध के सर मढ़ कर अपनी जान बचा लेते हैं। परन्तु नास्तिकों का रास्ता बड़ा कठिन है। उन्हें हर कदम सम्भल कर उठाना पड़ता है। उन्हें असाधारण वीर और दृढ़ होने की आवश्यकता है। उन्हें केवल अपने बाहु और बुद्धिबल पर निर्भर करना होता है। उनका मार्ग कठिन है, दुर्गम है परन्तु ठीक है वे अन्धकार, अज्ञानता अथवा शून्य के उपासक नहीं होते। वे अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करते हैं आंखें बन्द नहीं कर देते। वे अज्ञान की खोज करते हैं अज्ञानता की पूजा नहीं करते। वे समाज को उन्नति की ओर ले जाते हैं, लकीर के फकीर नहीं होते। उनमें पूछने का साहस और प्रश्न करने का सामर्थ्य होता है कि कोई बात किस प्रकार क्यों है। वे वाँछित व्यवहार को प्रथम स्थान पर रखते हैं।

यही दशा अजय की थी। वह सोचने लगा, "ठीक है, व अब पराई नारी है। उसके प्रति मेरे मन में ऐसी कोई कुचेष्टा उचित नहीं है जिससे उसे सुख दुख पहुँचे। ऐसी कोई भी बात करना मेरी भूल होगी। मैं उसका हितैषी मित्र हूँ। उसका कल्याण चाहता हूँ। उसको सुखी देखना चाहता हूं। वह अब एक अफसर की बीवी है। उसको अच्छा घर मिल गया है। वह आराम से रहेगी। उसका जीवन पर्यन्त निर्विघ्न निर्वाह होगा और वह जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लेगी। तब उसमें किसी प्रकार की विघ्न-बाधा डालना उचित न होगा।

अच्छा मैं उसके लिये इस प्रकार का घुलता क्यों हूँ। इस मनोव्यथा का मूल क्या है। अजय अधिक गम्भीरता से सोचने लगा। मैं उससे प्रेम करता हूँ। मैं उसे चाहता हूँ। मुझ में क्या है जो इस चाहत की तलाश करता है। यदि मैं उसे चाहता हूं तो किसी और को क्यों नहीं चाहता।

मेरे बीसियों कालिज के लड़के दोस्त थे। उनमें से किसीको मैं क्यों नहीं याद करता। और यदि किसी लड़की को ही चाहता हूँ तो और भी बहुत सी लड़कियाँ हो सकती हैं।" अजय इस विवेचना में और गूढ़ जाने लगा। "हाँ मैं लड़की को चाहता हूँ और लड़कियों में भी इन्दु को—यही दो बातें हैं जो मेरी मनोव्यथा का कारण हैं। लड़कियाँ भी लड़के को चाहती हैं। इन्दु भी तभी मुझे चाहती थी। समझ गया लड़का लड़की को और लड़की लड़के को चाहती है। इसका कारण लिंगभेद है। तब कोई किसी व्यक्ति विशेष को क्यों चाहता है, इसमें सम्पर्क और मोह का बड़ा हाथ है। सम्पर्क और मोह हमारी शक्तियों की विकसित आदतें हैं। वह हमारे मस्तिष्क में भी घूमती रहती हैं। हम प्रेम भी उसी के अनुसार करते हैं जैसी हमारी परम्परायें हैं। प्रणय के भी विभिन्न जातियों में विभिन्न तरीके हैं। सुन्दरता भी अपना माप-दण्ड है। यही देखो हिन्दुस्तानी लोग काली आँख को सुन्दरता का प्रतीक मानते है, जब कि अंग्रेज नीली आँख को पसन्द करते हैं। इसी प्रकार कहीं गूढ़े काले बाल पसन्द किये जाते हैं। तो कहीं भूरे सुनहरी। दो व्यक्तियों की आँखें एक ही व्यक्ति को दो दृष्टिकोणों से आँकती हैं।

ऐसा ही यह प्रेम भी है। बस अब मैं समझ गया यह प्रेम कुछ नहीं केवल एक मानसिक रोग है। मैं इससे निवृत्त हुआ चाहता हूँ। लो इन्दु मैं तुम्हारी बात जान गया। अब से हमारा तुम्हारा पत्र-व्यवहार समाप्त।"

# सुकुमार नारी और कठोर पुरुष

वैसे तो रिश्तेदार उसे कहते हैं जिससे कोई रक्त का सम्बन्ध हो। परन्तु रक्त का सम्बन्धमात्र पर्याप्त नहीं होता। उसके साथ साथ नित्य का सम्पर्क भी आवश्यक होता है। यदि सम्पर्क समाप्त हो जाये तो रक्त सम्बन्ध भी किसी काम का नहीं रह जाता है। इतिहास को सैंकड़ों ऐसी घटनायें हैं जहाँ रक्त के सम्बन्धियों में ही रक्तपात हुआ है। मुगलिया वंश के इतिहास में इस कथन की पुष्टि में कितने ही उदाहरण मिल सकते हैं। इसलिये सम्बन्धों में सम्पर्क की घनिष्टता का प्रधान स्थान है।

लोग रिश्तेदारों को इसलिये याद करते हैं कि उनके साथ रक्त-सम्बन्ध के अतिरिक्त घनिष्ठ सम्पर्क भी होत हैं। जब व्यक्ति जीवन की अग्रिम सीढ़ियों पर चढ़ने लगता है और उसे किसी विपत्ति या दुरुह कठिनाई का सामना करना पड़ता है तो वह अपने इन्ही रिश्तेदारों को याद करता है जिनसे उसका अधिकतम सम्पर्क रहा हो। यही संसार की रिश्तेदारी है। माँ-बाप, भाई-बहन, मामे-चाचे ये सभी नजदीकी और प्यारे उसी सीमा तक होते हैं जहाँ तक उनसे सम्पर्क रहा हो। और उसी सीमा तक वे भी आड़े समय में काम आते हैं। इस घनिष्ठ सम्पर्क के विधान के आधीन हम अकसर-औकात अपने मित्रों को अपने रिश्ते-दारों से भी ज्यादा चाहते हैं।

जब किसी की परिस्थितियाँ दुखकर होती हैं तो वह अपने पिछले शुभाकांक्षी सम्बन्धियों और मित्रों को याद करता है। इस आशा से कि

वे उसे अच्छी तरह समझते थे और उसके उचित स्थान व आदर को जानते थे। यह बात सभी के अनुभव की है। इसमें अपवाद न्यून हैं।

इन्दु के विवाह के बाद ही उसकी माँ की दशा कुछ शोचनीय हो गई थी। वह बिमार रहने लगी। घर में आय का कोई साधन नहीं रह गया था। उसको खाने पीने और दवादारू के लिये भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। ऐसी मुश्किल में उसकी मशीन और घर की बहुत सी अन्य वस्तुएं भी बिक गईं। मगर बुढ़िया ने इन्दु को शुरू शुरू में इसकी कोई सूचना नहीं दी। क्योंकि वह सोचती थी कि अभी अभी लड़की की शादी हुई है। इतनी जल्दी उसको बुलाना उचित नहीं है लेकिन एक दिन उसकी हालत अत्यन्त शोचनीय हो गई। और वह घर में ठण्डी पड़ी हुई पाई गई। बुढ़िया बिचारी इस नश्वर संसार से चल बसी। इन्दु को इसका बड़ा भारी सदमा पहुंचा। उसका एकमात्र सगा सम्बन्धी जाता रहा। वह अब अकेली थी, बिल्कुल अकेली।

उसकी कालिज की सहेलियाँ न जाने एक-एक करके कौन कहाँ-कहाँ को बिछुड़ गईं। बचपन की सहेलियाँ बड़पन तक न रहीं और जब वह पढ़ती थी तो सहेलियों से अधिक समय का सम्पर्क न था क्योंकि उसके पिता यहाँ से वहाँ और वहाँ से फिर कहीं तबदील होते रहे। इस अवस्था में उसकी यदि कोई भी सखी अथवा सखा हो सकते थे तो उन में दो वर्ष पुराना कोई भी नहीं था। उनमें से अधिक तो बिछुड़ गये थे और यदि कोई शेष होंगे भी तो इन्दु अब उनसे मिलने का न तो अवसर ही पाती थी और न उसका दिल ही करता था। उसका दिल टूट गया था। वह उसी के घावों को किसी तरह अलग-अलग रह कर भरना चाहती थी। तब इन परिस्थितियों में उसका घनिष्ठ सम्बन्ध अजय से था। इन दोनों वर्षों में इसी के साथ उसका अधिक से अधिक सम्पर्क और घनिष्टता स्थापित हुई थी। परन्तु यह घनिस्ट सम्पर्क भी परिस्थितियों पर बलिदान हुआ। अब इन्दु के लिये सिवाय सुसराल के और कोई ठिकाना न रह गया था। उसकी पिछली कदर व कीमत

को जानने वाला कोई न था। उसके लिये सब कुछ सुसराल था। यहाँ पर रूखी-सूखी उसे जो मिले उसी पर संतोष करना था। उसका सामाजिक सम्पर्क उसी घर की चारदीवारी तक सीमित होके रह गया।

पीछे चाहे जो कुछ था आगे उसे प्रकाश दीखता था। वह अपने को सुखी देख रही थी। मगर खेद का विषय है कि उसकी यह धारणा देर तक न बनी रह सकी बल्कि सर्वथा निर्मूल ही निकली।

गोविन्द चालाक पहले दर्जे का था। वह शराबी था, अयाश, लम्पट और कपटी। उसे इन्दु की आवश्यकता थी केवल अपनी कामवासना की तृष्ति के लिये। उसे उसकी आवश्यकता थी केवल जूठे बर्तन धोने के लिये।

वह इन्दु जो अब से छः महीने पहले विश्व भर में किस कोने में क्या हो रहा है उसे भली भाँति जानती थी, घर की चार-दीवारी में घिर कर मूढ़ होती जा रही थी। वही इन्दु जो अन्तर-राष्ट्रीय घटनाओं पर प्रकाश डालने के लिये कालिज में पुरस्कार पा चुकी थी इस अल्प सी अवधि में ही सब कुछ भूलती जा रही थी। कोई कितना ही विद्वान क्यों न हो, विद्या का नियम है कि वह अभ्यास के बिना उसका ज्ञान मन्द पड़ता जाता है। यही बात इन्दु के साथ भी हो रही थी।

सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी न जाने उसका पति क्यों उसे अपने साथ घूमने फिरने को नहीं ले जाता था। वह हर महीने पहली-दूसरी तारीख को यह आशा लगाये रहती थी कि स्वामी आयेंगे और अपना वेतन उसके हाथ पर रख देंगे। वह सोचती थी, "अब मैं हमेशा के लिये नई थोड़े ही रह गई हूँ। मगर उसके हाथ में सारी तनखाह का आना तो दरकिनार स्वामी ने १५-२० रुपये इस ख्याल से भी नहीं दिये कि उसके निजी खर्च के काम आयेंगे। इस पर इन्दु यही सोचकर तसल्ली कर लेती कि चलो पति की जेब में पैसे हैं तो मेरी ही जेब में

है। मगर इस सांत्वना से बहुत दिनों तक गुज़ारा न चल सकता था। घर में आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव होने लगा। यदि कभी दाल पक रही है तो महीना भर वही खाते बीत गया। । पाव भर दूध घर में चाये के लिये आता था, उसके लिये भी ग्वाला दो महीनों से तकाजा कर रहा था। साम के गले में छः महीनों से वही पुराना सा कुरता लटक रहा था। शुरू-शुरू में इन्दु ने सोचा कि शायद यह बुढ़िया रूढ़ि है और स्वयं ही वस्त्र पहनना नहीं चाहती। मगर धीरे धीरे उसको संदेह होने लगा।

एक दिन उसने पति से घर के खर्च के बारे में बात भी की। गोविंद ने बड़े सलीके से उसे समझाया। उसने कहा, "प्यारी, क्या बताऊँ हमारे धर्म की कुछ बातें ही ऐसी हैं। विवाह में मुझे इतना खर्च करना पडा कि अब तक उधार से छुटकारा नहीं हो पाया।" इन्दु ने विश्वास किया और काफी दिनों तक वह चुप हो रही। मगर उसके संदेह बढ़ते ही गये।

शुरू-शुरू में गोविंद इन्दु से चोरी छुपे शराब पिया करता था। और कभी यदि उसके मुख से शराब की बास आ जाती तो कभी अफसरों की बड़ी पार्टी का हवाला देकर टाल देता। और कभी कहता कि उसे कुछ ठण्ड की शिकायत रहती है इसलिए डाक्टरों ने राय दी हैं कि दो चमचे रोज बराण्डी के पिया करे। इन्दु सरल थी और अनुभवहीन भी। उसे ऊँचे समाज का ज्ञान न था। अलबत्ता बातें तरह तरह की उसने सुनी हुई थी। सोचती सम्भवतः बड़े अफसरों की पार्टियों में शराब पीना कुछ शिष्टता में आता होगा। यदि उसने कुछ कहा तो कहीं उसको यह न कह दिया जाये कि गरीब घर की है, इसलिए उसे कुछ पता ही नहीं। इन्हीं कारणों से वह काफी दिनों खामोशी से सब कुछ देखती रही।

जब गोविंद रोज रात को देर से घर पहुँचता तो इन्दु के पूछने पर कहता, "यह अफसरी भी एक लानत है। कागजों से सिर उठाने

की फुरसत नहीं मिलती। और आजकल के मातहतों में तो जिम्मेदारी कोई समझता ही नहीं है। सारा काम अपने हाथों से करना होता है।" इन्दु विश्वास करती थी।

घर के खर्च की हालत बिगड़ती जा रही थी। लोगों के तकाजे बढ़ते जा रहे थे। इस कारण इन्दु पति से खर्च के सम्बन्ध में कई बार कहने पर मजबूर हो गई। बल्कि इन्दु को इस सिलसिले में पति पर कुछ संदेह हो रहा था। इससे वह देख-रेख रखने की चेष्टा करने लगी। गोविंद को यह अच्छा न लगा। एक दिन इन्दु ने जब खर्च के बारे में बात की तो गोविंद ने क्रोधित होकर उसे झाड़ दिया। "जब देखो तुम्हारे मुँह में पैसा-पैसा की रट लगी रहती है। तुमने पैसा कभी देखा भी था, जो रोज पैसे ही पैसे की पुकार पड़ी रहती है। कटोरा उठाकर सड़क पर खड़ी हो जा और तब पैसा-पैसा पुकारा करना। पहले दफ्तर से थक हार कर आते हैं और यहाँ पहुँचते ही पैसा-पैसा की रट लगी रहती है।" इन्दु मुँह नीचा किये हुए सुनती रही। अकारण ही उसका पति उस पर बिगड़ता था। मगर तब भी वह उसे अपना सर्वस्व समझती थी। उसी की शुभकामना करती थी।

इन्दु अनुभवहीन थी परन्तु उसकी दृष्टि पैनी और बुद्धि बड़ी तेज थी। ज्ञान की लालसा सदा उसके मन में बनी रहती थी। इतने सब रुपये कहाँ जाते हैं वह इसे जानना चाहती थी। वह सोचती "सास के लिये कपड़ा नहीं बनता। मेरे पास वही पहले के कपड़े चल रहे हैं। घर में खाने के लिये सामान नहीं आता। इनके अपने भी वही वस्त्र चले आते हैं। एक पाजामा तक उन्होंने अपने लिये नहीं बनाया। लोगों के छोटी-छोटी रकमों के लिये तकाजे बढ़ रहे हैं। हो न हो दाल में कुछ काला अवश्य है। इतना रुपया कहाँ चला जाता है। इसका पता कैसे लगे। किससे पूछूँ, इनसे बात करूँ तो यह बिगड़ पड़ते हैं। वह मुझे स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि मामला क्या है। मैं उनकी जीवन संगिनी हूँ। मैं उनका हाथ बटाऊँगी। यदि किसी का देना है तो वह भी हो

जायेगा। हम एक सूची बना देंगे कि किसका क्या देना है। एक दो बार तो वह अपना वेतन मेरे पास देकर देखें। मैं देखती हूँ कि कैसे गुजर नहीं होता। चार सौ रुपया कोई मामूली बात नहीं है। एक अच्छी खासी रकम होती है।"

अगले दिन इन्दु कोई तरकीब सोचने लगी जिससे पतिदेव को मनाया जाये ताकि वह सारी बातें सही-सही सामने रख दें। प्रेम सच्चा हो अथवा उसका अभिनय, नारी पात्र हो तो अमोघ अस्त्र का कार्य कर सकता है। इन्दु ने सोचा, "आज आते ही उनके गले में झूल जाऊँगी। उनका मुँह चूमूँगी। तब प्रेम से बिठाकर उनके पैर दबाऊँगी, इसमें बुरा भी क्या है। वह मेरे पति हैं।" उसने निश्चय कर लिया। उसने शृंगार किया। बालों में सुगधित तेल डाला। मुह पर पाउडर छिडक दिया और दो-तीन छोटी इलायचियाँ मुँह में डालने के लिये रख छोडी। इन सब चीजों का प्रबन्ध उसने कैसे और कहाँ से किया यह जानने की विशेष आवश्यकता नहीं है। यह वस्तुएं उसके घर में किसी समय की पडी हुई थी। इन्दु इन दिनों अपने पति के लिये एक स्वेटर बुन रही थी। जब तक पति देव न आये बैठकर बुनती रही। वे जिन बातों को जानने के लिये प्रयत्नशील थी आज वे उसे अधिक प्रयत्नों के बिना ही मालूम हो गईं। आज गोविंद आधी रात से पहले घर नहीं पहुँचा। इन्दु की आँखें बार-बार नींद से बन्द हुई जा रही थी। वह ऊँघ रही थी, झपकियाँ ले रही थी; पर तो भी जैसे-तैसे बैठी ही रही। दरवाज़े पर खटका होते ही उसने बुनने की सामग्री नीचे रख दी और प्रसन्न मुद्रा में दरवाजा खोलने के लिये दौड़ी। दरवाजा खुलते ही गोविंद मेंढक की तरह उछल कर लड़खड़ाता हुआ चारपाई पर उलट गया। वह शराब में बदमस्त था और मुँह से बेहद बदबू छूट रही थी।

इन्दु की सब आशाओं और योजनाओं पर पानी फिर गया। अब उसे अपनी दरिद्रावस्था को समझने में देर न लगी। उसने गोविंद को

ठीक तरह से चारपाई पर लिटा दिया और स्वयं बैठ कर अपने दुर्भाग्य पर विचार करने लगी।

इतने में गोविंद को उलटी आई। सारा बिस्तर और कपड़े खराब हो गये। इन्दु ने आधी रात गये पानी लायी। जहाँ-तहाँ छितरे गंद को अपने हाथों से उठाया, धोया और पोंछा। गोविंद पड़ा हुआ बैल की तरह साँस ले रहा था और इन्दु बैठी अपने भाग्य को रो रही थी। वह जब अनुभव शून्य थी तो सुखी थी और जब उसका अनुभव बढ़ने लगा तो उसके दुखों में भी वृद्धि होने लगी।

कुछ दिनों पश्चात सास बीमार पड़ गई। उसकी सेवा शुश्रुषा का कार्य भी इन्दु के ऊपर आ पड़ा। धीरे-धीरे बुढ़िया इतनी कमजोर हो गई कि उसके शौचादी को भी इन्दु को उठाकर ले जाना पड़ता। मगर वह कतराई नहीं, घबराई नहीं। उसने सास को माँ की तरह समझा। और उसकी सच्चे दिल से सेवा की। इसमें उसने न कोई बुराई समझी और न ही कोई हिचक की। वह इसे अपना कर्तव्य समझती थी।

एक तो शहर की जिंदगी और उसमें शराब की लत घर को जल्दी ही बरबाद कर देती हैं। गोविंद के घर की दशा शोचनीय होती जा थी। शादी के समय बिस्तर इधर-उधर से माँग कर लाये थे। वे वापिस हो गये। तब उसके पास अपने वही दो बिस्तर रह गये थे। उनमें से एक बुढ़िया के पास था और दूसरा मियाँ-बीवी के पास।

बीमार सास का बिस्तर बहुत गंदा हो रहा था। दूसरा बदलने को न था। इन्दु सोच रही थी, "अपनी माँ का जो कुछ छोटा-मोटा सामान पड़ोसियों के पास पड़ा है वह कल ही ला दूंगी। वहाँ एक बिस्तर भी है। इससे हमारी यह तंगी कुछ दूर हो जायेगी।" मगर उसको सास के बिस्तर से जो बदबू छूट रही थी उसे देखकर इन्दु को बहुत दुख हुआ। सोचा कि कम से कम बीमारी की हालत में ऐसा बिस्तर नहीं होना चाहिये। यह तो घाव पर नमक छिड़कने के समान

है। इसलिये उसने अपने बिस्तर से बिछौना और चादर उठाकर सास के लिये बिछा दिये। उसने मन में कहा कि आज के दिन हम यूँही दरी और रजाई पर गुजर कर लेंगे। कल सास की चादर भी धो लूँगी और अपनी माँ का सामान मँगवाने का प्रबन्ध भी कर दूँगी।

आज गोविंद जल्दी घर आ गया था और खाना खाकर कहीं बाहर निकल गया था। जब वह वापिस पहुँचा तो रात के दस बज रहे थे। बुढ़िया अपने कमरे में पड़ी सो रही थी। इन्दु बर्तन माँज रही थी। गोविंद अपने सोने के कमरे में गया। वह सोना चाहता था। जब उसने अपने बिस्तर पर केवल दरी और रजाई ही पाई तो उसके मस्तक पर बल पड़ गये। वह करकश स्वर में बोला, "अजी सुनती हो।" इन्दु वैसे ही राख वाले हाथों से दौड़ी-दौड़ी आई। उसकी नजर फर्श पर थी। बड़ी नम्रता से बोली, "क्या है ?"

"रात के दस बज चुके हैं और बिस्तर अब तक नहीं बिछा।"

इन्दु वैसे ही नतमस्तक बोली, "बिछा तो है।"

"तेरा सिर बिछा है।"

आप खामखाह बिगड़ रहे हैं। बिछौना और चादर आज सास के लिये बिछाये हैं। क्या करती घर में कोई और बिस्तर भी तो नहीं। सोच रही थी·····

गोविंद ने क्रोधित होकर बीच ही में बात काटते हुए कहा, "ऐसा था तो अपने लिये एक बिस्तर तो साथ लाया होता। नीच कहीं की।"

"आपके ऐसे स्वभाव पर मुझे बड़ा दुख होता है।"

"दुख की बच्ची। निकल जा मेरे आगे से।" इतना कहते-कहते उसने इन्दु के मुँह पर जोर से एक तमाचा दे मारा। "बड़ी आई दुख उठाने वाली।" गोविंद ने बड़बड़ाते हुए कहा। इन्दु का सिर दरवाजे से जा टकराया। यह क्रूरता की पराकाष्टा थी।

जो माँ अपने इस पुत्र को लगातार २८० दिनों पेट में उठाये फिरती रही, सालों अपनी छाती से दूध पिलाती रही। खाने पर बैठी

हुई भी जो उसके मलमूत्र को हँसते-हँसते उठाती रही। जहाँ पुत्र का पसीना बहता वहाँ अपना खून बहाने को सदा उद्यत रही। उसी माँ के लिये आज उसका यह कृतघ्न कपूत ऐसी बिमारी की अवस्था में भी अपने बिस्तर की चादर तक छोड़ने में झिझकता था।

इन्दु थप्पड़ खाकर रोई नही। गाली सुनकर बोली भी नही। जहाँ से उसका सिर दरवाजे से टकराया था वही उलटी ओर से हाथ रख कर रसोई घर को चली गई। उसके सुकुमार गाल पर पाँचो उँगलियो के निशान साफ दिखाई दे रहे थे। उसने गुसलखाने में जाकर हाथ धोये और रसोई घर के पटड़े पर बैठ कर हाथों में मुह छुपाकर गम्भीरता से अपनी दशा पर विचार करने लगी। गोविन्द लेट गया था।

# पति त्याग

"माँ कहती थी बड़ा भद्र व्यक्ति है। दहेज का कोई झगडा बखेड़ा खड़ा नहीं किया। मगर आज वह एक बिस्तर भी मेरे मायके से चाहता है। मैंने कौनसा अपने लिये रखा था। उनकी माता है। बिचारी ऐसी दशा में कितने दिन काटेंगी। फिर इसमें इतना बिगड़ने की बात ही क्या थी। इतना ही नहीं मुझे अपने से दुर्बल देखकर भरपूर थप्पड़ मेरे मुंह पर दे मारा। हाय माँ बाप से मैंने कभी मार नहीं खाई थी। टीचर प्रोफैसर किसी से झिडकी तक न सुनी थी। तब क्या मैं इस छोटी सी अवधि में इतनी नीच हो गई। इतनी अधम हो गई। इतनी अकिंचन हो गई कि मुझे पशु की तरह मारपीट कर सीधा किया जाये। नहीं यह गलत है। गोविन्द घमण्डी है, वह शराबी है, विलासी है। मै उसके लिये केवल विनोद का एक खिलौना हूँ। वह भी यदि टूट जाये तो मरम्मत की आकश्यकता नहीं। क्या यही नारी का जीवन है। क्या सचमुच नारी इतनी अपदार्थ है। मैंने एम० ए० पास किया, क्या इन्हीं फटकारों को सुनने के लिये। इससे तो किसी कालिज में लेक्चरार लग जाती। लेक्चरार न सही किसी प्राइमरी स्कूल में टीचर तो लग सकती थी। क्या मैं सर्वथा अयोग्य हूँ। बेकार हूँ, नाकारा हूँ। यह मेरी भूल है।

तब क्या मेरा धर्म मुझको ऐसी क्रूरताओं को चुपचाप सहन करने के लिये बाधित करता है। यह क्या है। क्या यह निरीह प्राणियों को दबाने का एक सुगम साधन नहीं ? जब ईश्वर ही नहीं तो धर्म किस-

का है। यह सब भ्रम है। धर्म कुछ नहीं। कार्लमार्क्स ने ठीक ही कहा था कि धर्म लोगों के लिये अफीम है। मैं अफीम को नहीं निगलूंगी। नारी अपने पति की लातें खाने के लिये नहीं बनी है। वह कोई खिलौना नहीं है, वह इन्सान है। बिलकुल वैसा ही इन्सान जैसा कोई पुरुष। काश मैं पहले ही वह कार्य करती जिसे माँ कमीने घर की लड़कियों की करतूत कहती थी। तब मैं उस कमीनी हरकत को करके सदा के लिये सुखी तो रहती। मैंने कुलीन बनने के लिये मर्यादापूर्ण आचरण करने की चेष्टा की और आज अपने ही पति द्वारा नीच कहलाई, कमीनी बनी।" इन्दु के हृदय में गोविन्द की उपेक्षित व्यवहार के कारण जो चिंगारी पड़ गई थी वह आज धधकती ज्वाला का रूप धारण कर रही थी। वह अपने आप से बोली, "छि मैं उन्हें अपना पति नहीं मानती। वह दुष्ट है, दुरात्मा है। नीच मैं नहीं हूँ वह है जो अबला नारी पर हाथ उठाने में शर्म नहीं समझता। वह भीरू है जो केवल नारी से लड़ना जानता है। हाँ मैं ठीक हूँ। वह कोई और होंगी जो सारी उम्र दुष्ट पति की लातें खाकर उन्हीं पैरों की पूजा करती रहती हैं। पूजा नेकी की होती है। नेकी के पुतले की होती है। दुष्टों की पूजा करने से उनको, उनकी दुष्टता को प्रोत्साहन मिलता है। मैं उस पथ की पथिका नहीं बनूंगी। मैं पढ़ी लिखी हूं। अनपढ़ नारियों के लिये मुझे कोई आदर्श स्थापित करना चाहिये। मैं वह करूँगी जो किसी ने नहीं किया।" इतना सोचते-सोचते उसने अपने मुंह से हाथ हटा दिये। उसका मुंह विकराल दिखाई दे रहा था। उसकी पलकें निर्निमेश थीं। उसकी मुद्रा से स्पष्ट था कि उसने कोई दृढ़ संकल्प किया है। "मैं पुरुषों को भी एक पाठ पढ़ाऊँगी। वह सोचता है, मैं अकेली हूँ, निस्सहाय हूं। मेरा कोई सगा सम्बन्धी नहीं है। न सही। मैं पशु नहीं हूं कि जिधर चाहा डंडा मार कर हांक दिया। उस से अधिक पढ़ी लिखी हूँ। उससे अधिक मेरा सामान्य ज्ञान है। मुझे इसका घमण्ड नहीं और न पहले कभी था। वरना मैं ऐसे दुराचारी मूर्ख का हाथ ही क्यों

पकड़ती। अब सीमा समाप्त हो गई। अब मैं सहन नहीं कर सकती। करूँ भी किसलिये। केवल दो टुकड़े सूखी रोटियों के लिए। और मुझे यहाँ क्या मिल रहा है। यह व्यक्ति चार सौ रुपया लेकर मुझे एक नौकरानी की तरह भी नहीं रख सकता। मेरी माँ मामूली आय से मुझे कितनी अच्छी तरह रखती थी।

जीवन का लक्ष्य जीवित रहना है। मैं जीवित तो हूँ पर यह जीवन पशुओं के जीवन से भी बदतर है। तभी तो अजय कहता था कि जीवित रहने के लिये निर्विघ्न निर्वाह भी होना चाहिए। यह निर्वाह है परन्तु निर्विघ्न नहीं। मैं निर्विघ्न निर्वाह चाहती हूँ। अजय ठीक कहता था। वह मेरा हितैषी था। मैंने उसे धोका दिया।" इतना सोचकर इन्दु का हृदय आत्मग्लानी और दुख की आग से जलने लगा। उसे अजय के प्रति सहृदयता का भास होने लगा। "अजय मैं पतित हूं। मैंने तुमसे विश्वासघात किया। इसके लिये तुम मुझे क्षमा करना। तुम महान हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम क्षमा भी कर दोगे। न करोगे तो भी मैं तुमसे हजार बार क्षमा माँगूंगी। तुम मानव हो, अपितु उससे भी ऊपर देवता हो। गोविंद की तरह राक्षस नहीं हो। मैं तुम्हारी ही शरण चाहती हूँ। बेशक मैंने तुमसे विश्वासघात किया। उसका कटुफल भी मुझे मिल गया। आज मैं खून के आँसू रो रही हूँ। मेरी अन्तरात्मा जल रही है। मैं घोर नर्क की यातनायें भोग रही हूँ। मेरे प्रिय मित्र, प्रियदर्शी, तुम मेरे हृदय में हो। चाहे मैंने बाहरी रूप में कुछ भी किया परन्तु तुम मेरे हृदय पटल पर अंकित हो।" इन्दु भावुक होती जा रही थी। उसको अजय का वही चिरअमर चुम्बन याद हो आया और क्षण भर के लिये वह अपनी वर्तमान अवस्था को भूल सी गई। फिर अगले ही क्षण अपनी स्थिति उसके सामने थी। "अजय मुझे तुम पथ दिखलाओ। तूफान में फँसी मेरी नैया को किनारे लगाओ। हे मेरे आराध्यदेव मेरा पथ प्रदर्शन करो। ठीक है अब मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। पर तुम ज्ञानी हो, परमार्थी हो, इसी नाते मेरी

सहायता करो। मैं तुम्हारी शरण आती हूँ।"

सुबह के पाँच बजने लगे थे। बाहर धीमा-धीमा प्रकाश होने लगा था। इन्दु उठी और सैंडल डालकर घर से बाहर निकल गई। वह आगे बढ़ी और इस घर की ओर उसने एक बार भी मुड़कर नहीं देखा। वह निश्चल योगिनी सी चलती रही और यथोचित समय के पश्चात् अजय के घर पर जा पहुँची। पहुँचते ही बरामदे में अजय की माँ से भेंट हुई। अभिवादन करने के पश्चात इन्दु ने पूछा, "अजय कहाँ है ?"

"इतने सवेरे-सवेरे इधर कैसे निकल आई हो। अन्दर चलकर बैठो।" दोनों अन्दर जाकर बैठ गईं। इतने में नौकर चाय भी ले आया। माँ ने इन्दु को चाय का प्याला देते हुए कहा, "तुम कुछ दुबली हो गई हो। तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

"माँ जी स्वास्थ्य तो ठीक ही है।"

"तब तुम्हारा फूल सा चेहरा मुर्झाया हुआ क्यों दिखाई देता है। बेटी, अजय तुम्हें बहुत याद करता था। जब देखो तुम्हारी ही बात मुँह पर रहती थी। तुम्हारे गुणगान वह भजन की तरह करता था। वैसे तो वह नास्तिकता की बातें करता फिरता है परन्तु ऐसे लगता था कि तुम ही उसकी आराध्य देवी हो।"

"वह कहाँ है अब ?" इन्दु की अन्तरवेदना उसे भीतर ही भीतर से जलाये जा रही थी।

"बेटी वह अग्रिम शिक्षा के लिये विदेश गया है। वहाँ से तीन साल के बाद लौटेगा।"

सुनते ही इन्दु पर वज्रपात हो गया। वह अब सचमुच अकेली थी। आज के इस संसार में जहाँ मनुष्य मक्खियों की तरह भिनभिनाते दिखाई देते हैं वहाँ इन्दु अपने को बिल्कुल अकेला देख रही थी। वह अब अधिक यहाँ न बैठ सकती थी। उसके हृदय में आग धधक रही थी जिसकी लपटें केवल उसी का दग्ध मन अनुभव कर रहा था और

जो किसी की भी दृष्टि से परे थीं। उसने प्याला मेज पर रखते हुए कहा, 'माता जी नमस्ते, अब मुझे जाना है।"

"बेटी बैठो, इतने दिनों के पश्चात यहाँ आई हो। जल्दी क्या है, आज यहीं खाना खाकर जाना।"

मुझे कोई जरूरी काम है। आपसे चाय पी ली है। बाकी धन्यवाद अच्छा नमस्ते।" इतना कहकर वह बाहर निकल आई। मगर उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। वह चलने का यत्न करती थी मगर उसे सेर अफीम का नशा हो रहा था। जूँ तूँ कुछ आगे बढ़ी। अब किधर जाए, क्या करे। अपनी सीमाओं का उग्र रूप उसे डरा रहा था। वह लक्ष्य-हीन बढ़ी चली जा रही थी। वह बढ़ती ही चली गई। वह अनमनी सी उस पिकनिक के स्थल की ओर जाने लगी जहाँ वह कभी कालेज के दिनों में गई थी। वह कुछ समय के पश्चात वहाँ पहुँच गई और उसी झील के किनारे, उसी वृक्ष के नीचे जा बैठी।

कालिज के दिनों का एक-एक दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। विद्यार्थियों के साथ घूमना-फिरना, गप्पें हाँकना, खेलना और दौड़ना-भागना उसे सब याद आने लगा। "कैसा अच्छा जीवन था वह। कैसा उच्छृंखल उन्माद था उस अवस्था में। वह सब कहाँ लुप्त हो गया। आज मेरी हँसी कहाँ खो गई। मैं बिना धूप के पौधे के समान मुरझाती क्यों चली जा रही हूँ। आज मेरी भृकुटि मे बल क्या पड़े रहते हैं। मेरा मुँह सूख क्यों रहा है। मेरा दिल क्यों बैठा जा रहा है। मैंने ऐसा कौन पाप किया है। यह किस कुकर्म का फल मैं भोग रही हूँ।" इन्दु हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगी। उसकी आँखों से अनवरत अश्रुधारा बह रही थी। रोने और आँसू बहाने से उसका दिल कुछ हल्का हुआ। ऐसे पड़े-पड़े उसे नींद आ गई क्योंकि वह पिछली रात न सो सकी थी।

जब उसकी आँख खुली तो शाम होने लगी थी। वह हड़बड़ा कर उठी। उसकी घबराहट बढ़ गई। "कुछ ही देर में रात अपनी काली

चादर फैला देगी।" इन्दु ने यह सोचते ही दोनों हाथों में अपना मुँह छुपा दिया। "कहाँ जाऊँ, किधर भागूँ। कुछ समझ में नहीं आता।" वह आँखें मलने लगी। "मेरी अकल काम क्यों नहीं कर रही। मुझे क्या करना है। मुझे बताने वाला इस दुनियाँ में कौन है। यदि जीना आवश्यक है तो जीवन का यह बोझ इतना भारी क्यों है। इस लक्ष्य-हीन जीवन का अन्त ही कर देना चाहिये। इसी झील में झलाँग मार कर प्राणान्त कर दूँ। थोड़ी ही देर में शरीर ठण्डा हो जायेगा। हमेशा के लिये आराम की नींद सो जाऊँगी। मछलियाँ मेरी देह से अपना पेट भरेंगी। कोई मगरमच्छ ही मुझे निगल जायेगा।" इतना सोच कर इन्दु भय खा गई। उसे डर लगने लगा। यदि जीना कठिन है तो मरना और भी कठिन है। वह आकाश की ओर देखने लगी। एकाएक उसे अजय की याद आई। "हाय यदि तुम यहाँ होते तो कम स कम रास्ता दिखा जाते कि मुझे क्या करना चाहिये। हाँ तुम बता सकते थे।" इन्दु कुछ शून्यबुद्धि सी एकटक देख रही थी, "अरे तुमने कुछ बताया था। कहा था कि जीना ही जीवन का लक्ष्य है। निर्विघ्न निर्वाह उसकी पूर्ति है। मुझे यह भी नहीं भूला। तुम मेरे मानसिक गुरू हो। मैं तुम्हारे बताये पथ की पथिका बनूँगी।" इन्दु को लगा कि उसे रास्ता मिल गया। वह झटपट उठ खड़ी हुई और आगे चल पड़ी। झील के निर्मल पानी से अपना मुँह धोया। अपने बालों को सँवारा और फिर शहर की ओर चल दी। शाम हो गई थी। नगर की सड़कों पर बत्तियाँ जल चुकी थीं। चलती-चलती इन्दु नगर के सबसे बड़े होटल के पास पहुँच कर रुक गई। पल भर सोचकर उसकी सीढ़ियों से वह ऊपर चढ़ गई। होटल में अन्दर दाखिल हो गई। उसके मन में भय था परन्तु वह दृढ़ता से कदम रखती चली गई। होटल के डाईनिंग हाल में एक तरफ खड़ी होकर देखने लगी। बहरे ने पूछा, "आप क्या देख रहे हैं। चलकर बैठ जाइये।"

इन्दु ने जरा बेपरवाही से कहा, "किसी को देख रही हूँ।" वह

फिर देखने लगी। बहरा अपने काम में लग गया। इन्दु ने सब टेबुल देखे। कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार व्यक्ति बैठे थे। कोई खाने में मस्त था तो कोई गप्पें हाँक रहा था। कोई चाय का घूँट पी रहा था तो कोई सुरा चषक में मस्त था। इधर बैंड बज रहा था। और कुछ युगल अंग्रेजी नाच कर रहे थे। एक बूढ़ा मेज पर कोहनी रख कर हाथ के सहारे सिर झुकाये बड़े चाव से इस डाँस को देख रहा था।

एक कोने में एक टेबुल पर कोई मिलिट्री का अफसर अकेला बैठा था। इन्दु उसी की ओर बढ़ गई। जाकर उसके ठीक सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई। और तब उससे इंगलिश में बात करने लगी। एक लम्बी अवधि के पश्चात इन्दु की जबान पर इंगलिश भाषा ने फिर शोभा पाई। उसका स्वर मधुर और अदा कमनीय थी। "आप चाय पीजियेगा।"

नौजवान आश्चर्यचकित रह गया। और बोला, 'मैंने आर्डर दिया हुआ है। आप कष्ट न करें। लो वह ले भी आया।" बहरा सामने चाय रख गया। "बहरा, कुछ खाने को भी लाओ।" तब वह विस्मित सा उस युवती से पूछने लगा, "क्षमा कीजिये, मैं आपको पहचान नहीं सका।"

"अरे आप पहचान भी कैसे सकते हैं।" इन्दु ने मुस्कराते हुए कहा। "मेरी आपकी पहली ही भेंट है।"

सेना के इस अधिकारी का नाम भुवनेश्वर था। इन्दु ने इस पर बिल्कुल अचानक चढ़ाई की थी और वह पराजित हुआ जा रहा था। वह इस वार्तालाप के लिये तैयार नहीं था। इसके अतिरिक्त वह कँवारा था। उसे औरतों से साक्षात्कार करने का अनुभव बहुत कम था। वह भौंचक्का, बहका हुआ सा रह गया। उसे सूझ ही न रहा था कि अब क्या बात करे। इन्दु उसका पता जानना चाहती थी। बोली, "मेरे अनुमान में आप अविवाहित हैं।"

"जी हाँ।"

"क्या आपके साथ और कोई नहीं।"

"कोई नहीं।"

"आप कहाँ ठहरे हैं ?"

"इसी होटल में। मैं किसी कार्य से यहाँ आया था और कल सुबह ही चला जाऊँगा। मगर आप ये सब बातें किसलिये पूछ रही हैं ?"

"किसी मतलब ही से पूछ रही हूँ। आपको कोई एतराज हो तो मत बताइये।"

भुवनेश्वर को लगा कि देवी जी नाराज हो रही हैं। वह जरा विनयपूर्वक बोला, "नहीं, आप शौक से पूछिये। मुझे क्या एतराज हो सकता है।"

"तो श्रीमान् यदि आप बुरा न मानें तो मैं आप ही के कमरे में चल कर आपसे दो चार आवश्यक बातें करना चाहती हूँ।"

भुवनेश्वर बिल्कुल हक्का बक्का हो रहा था। वह समझ नहीं रहा था कि मुआमला क्या है और इससे कैसे निपटना चाहिए। वह सोच रहा था, "मैं कुछ दिनों से यहाँ आया हूँ तब यह औरत मुझसे ऐसे क्यों बातें कर रही हैं जैसे मेरी चिरपरिचित हो।" इसकी स्पष्टवादिता से जहाँ वह प्रभावित हो रहा था वहाँ उस पर शक भी करने लगा था। "यह खामखाह मेरे पीछे क्यों पडी है। क्या यह कोई आवारा या फाश औरत तो नहीं है ? कहीं मुझे भी अपने साथ ले डूबे।" इस ख्याल के आते ही उसने कहा, "आपने जो कुछ बात करनी है वह यहीं कर लीजिये। कमरे में जाने की क्या आवश्यकता है ?"

इन्दु उसकी झिझक को समझ रही थी। मगर वह फिर बोली, "जब आप यहाँ पर मेरी बातें सुनने को तैयार हैं तो आपके कमरे में चलकर आपको क्या आपत्ति हो सकती है। आखिर यहाँ भी होटल है और वहाँ भी होटल है।"

भुवनेश्वर निरुत्तर हो गया। लाचार उसे मानना पड़ा। वे दोनों

उठकर कमरे में चले गये। और कुर्सियों पर बैठ गये।

इन्दु को न जाने आज कहाँ से इतना साहस मिल गया था कि वह बेधड़क बातें कर रही थी। उसने बैठते ही कहा, "मैं एक मुसीबतजदा नारी हूँ। आप एक आफीसर हैं। यदि आप चाहें तो मेरी सहायता कर सकते हैं।"

भुवनेश्वर के मन में दया भाव जागृत हो गये। बोला, "कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।"

"केवल मुझे शरण चाहिए। मैं आपके पास नौकरानी रहूँगी। जब तक मुझे कोई अन्य कार्य न मिल जाये तब तक आपके निजी कार्य में हाथ बटाया करूँगी। बस दो वक्त की रोटी और सिर ढाँपने के लिए मकान के अन्दर थोड़े से स्थान की मुझे आवश्यकता है।'

"यह तो मैं तुम्हें इनकार न करता। परन्तु मैं कल सुबह ही यहाँ से जा रहा हूँ।"

"मैं आपके साथ चलूँगी।"

"तब मुझे कोई एतराज नहीं है।"

अगले दिन सुबह ही इन्दु भुवनेश्वर के साथ इस नगर से चली गई। भुवनेश्वर को उसकी उपस्थिति कुछ अनोखी सी लग रही थी। मगर अब वह मजबूर था। दुखिया बिचारी रोज सुबह भुवनेश्वर से भी पहले उठ जाया करती थी। उसके बूटों में पालिश करती। उसके लिये शेविंग का सामान तैयार करती। उसके कपड़ों में प्रेस करती। और जब वह दफतर जाने लगता तो झट से उसका कोट लाकर कन्धे पर रख देती।

भुवनेश्वर इस बिन माँगी सेवा के बोझ से दबा जा रहा था। इन्दु बातें अधिक न करती थी। केवल उतना बोलती थी जितना बिल्कुल आवश्यक था। दिन को अखबार पढ़ा करती थी और रिक्त स्थानों के विज्ञापन देखती थी। उसने बहुत से स्थानों पर अपने प्रार्थना-पत्र भी भेज दिये थे।

# बीवी की तलाश

गोविन्द रात भर तो बेपरवाही से पड़ा सोता रहा। उसने सोचा, "रहने दो, जब तक बैठती है बैठने दो। अपने आप सीधी हो जायेगी उसे अपने रूप और शिक्षा का बड़ा घमण्ड हो गया है। ढोल और नारी तो पीटने ही से ठीक काम करते हैं। एम० ए० पास कर लिया तो लगी सिर पर चढ़ने।"

मैं देर से घर आता हूँ तो क्या हुआ। उसे मेरी जाती जिन्दगी में दखल देने का कोई अधिकार नहीं। मैं शराब पीता हूँ तो अपने पैसों से। मैंने उसके कौन से जेवर बेच डाले हैं। अगर मैं जूए में हारता हूँ तो अपनी कमाई। उसकी जेब से क्या जाता है मरदों के मुआमलों में औरत का दखल बिल्कुल बुरी बात है। हाँ बिल्कुल बुरी। गोविन्द ने करवट बदली। "वह मर्द ही क्या है जो हमेशा अपनी औरत की गुलामी करता रहे। औरतों को तो दबाकर ही रखना चाहिए। गोविन्द अपने किये पर पछताया नहीं। मगर कहीं जरा सी आहट होती तो वह चुपके से जरा सी रजाई उठा कर बीच में से झाँक लेता था कि कहीं आ तो नहीं गई। मगर जब देखता कि नहीं आई तो आँखें बन्द किये पड़ा रहता।

रसोई घर में बिजली जल रही थी इससे वह तसल्ली से पड़ा रहा। बैठी है। बैठने दो मैं मनवाने वाला नहीं हूँ। वे कोई और होंगे जो औरतों की खुशामदें करते हैं। इन्हीं घमण्ड भरे विचारों में रत उसकी आंख लग गई। सुबह उसकी नींद और भी गहरी हुई जा रही थी।

कहीं आठ बजे के करीब जब उसकी आँख खुली तो उसने इधर-उधर देखा। वहां कोई न था। फिर उसने रसोई की तरफ देखा। वहाँ पर मन्द-मन्द बिजली का प्रकाश उसे दिखाई दिया। फिर उसका रक्त क्रोध से खौलने लगा। "अरे अभी तक बिजली जल रही है। सचमुच यह चुड़ैल मेरा दिवाला निकलवा कर छोड़ेगी। बाहर धूप लगी है और घर में अभी तक बिजली नहीं बुझी। वह फुरती के साथ उठा और जल्दी-जल्दी कदम उठाता हुआ निचले होंट को दाँतों में दबाकर रसोई की तरफ लपका। रसोई में झाँका तो वहाँ कोई न था। उसका होंट सीधा हो गया। वह कुछ संदेह और विस्मय के साथ रसोई घर का कोना-कोना देखने लगा। मूर्ख, वह कोई सूई थोड़े ही है जो बारीकी से देखने पर नजर आती। फिर वह कमरे में लौट आया। वहाँ भी सब जगह देखा। चारपाई के नीचे भी देखा। कहीं कोई न था गोविन्द माँ के कमरे की तरफ बढ़ा। वहाँ देखा, मगर इन्दु को वहां भी न पाया अपनी मां की दशा पूछने की उसने चेष्टा तक नहीं की। उसकी माँ एक टक करुणाभरी दृष्टि से उसकी ओर देखती रह गई कि वह लपक कर बाहर निकल आया। बरामदे से इधर-उधर चारों ओर देखने लगा उसे इन्दु कहीं न दिखाई दी। अब वह निराश, ठगा सा लुटा सा मुँह दबाये कुछ खोजता रहा मगर उससे क्या होने वाला था।

गोविन्द अनुभवी था और यत्नशील भी। कठिनाई उसके साथ केवल इतनी थी कि वह घमण्डी था और इसके अतिरिक्त उसके प्रयत्न सदकार्यों की उपेक्षा कुकर्मों की ओर अधिक चलते थे। वह प्रयत्नशील रहा था केवल सुरा सुर और सुन्दरी के लिए। उसकी कामना थी केवल माँस, मदिरा और मैथुन की। ये वस्तुएं उसे प्राप्त थीं चाहे उस का सारा धन उसी पर लुट रहा था अन्य पदार्थों के लिए उसे अन्यत्र प्रबन्ध करना होता था और पैसे खर्च करने पड़ते थे परन्तु मैथुन यन्त्र उसके अपने हाथ में था और वह भी बिल्कुल मुफ्त। मगर आज वही यन्त्र कहीं खो गया था।

वह प्रयत्नशील था प्रयत्न करने के लिए बाहर निकल पड़ा वैसे बात भी मामूली न थी। उसकी बीवी गुम हो गई थी। सबसे पहले वह इन्दु के माइके की तरफ बढ़ा, क्योंकि उसने सोचा कि शायद किसी पुरानी पड़ोसन के यहाँ न चली गई हो। वहाँ जाकर उसने पता किया मगर उसे हताश होकर लौटना पड़ा। जब वह सोचने लगा, "वह निर्लज है, पतिता है। हो न हो अपने पुराने कलासफैलों के घर गई होगी। मक्कार धोकेबाज। क्या यही उसकी अकल है। यही है उसका पति-प्रेम है। यही है उसका सतीत्व गोविन्द को क्रोध आने लगा। मगर वहाँ कौन था जो उसके क्रोध का शिकार बनता वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहा था। "आज मैं उस अजय के भी होश ठिकाने लगा दूंगा। नीच कहीं का वह उसका कौन होता है। इन्दु मेरी है। मैं उससे चाहे जैसा बरताव करूँ वह बिना खर्च का वकील बीच में कहाँ से आ टपक पड़ा है। इसी गर्मी में वह तेजी से अजय के घर की ओर बढ़ा जा रहा था। और जल्दी ही वहाँ भी गया। अब दिन काफी चढ़ चुका था।

घर पर अजय की माँ मिली। उससे बोला, "क्यों जी आपके सपुत्र कहाँ हैं।"

अजय की माँ ने साड़ी को सिर पर आगे सरकते हुए कहा, "आप कौन हैं। उसका पता क्यों पूछ रहे हैं?"

गोविन्द फिर उसी तेजी से बोला, "मैं इन्दु का पति हूँ। क्या वह इधर आई थी?"

"कौन इन्दु?"

"जैसे तुम्हें पता ही नहीं। वही जो कभी-कभी अजय के साथ यहां आया करती थी। उसकी क्लासफैलो थी।"

अजय की माँ को उसका इस प्रकार अकारण ही रूखे और कर्कश स्वर में बात करना बिल्कुल पसंद नहीं आया। वह जरा त्योरी चढ़ा

कर बोली, "वह लड़की तो बड़ी अच्छी है, सभ्य है। मगर तुम्हें तो तमीज से बात तक करनी भी नहीं आती। आदमी की तरह कुछ पूछना चाहते हो तो बात करो नहीं तो चले जाओ। हमारे घर में हमें ही धमकाने आये हो।"

गोविंद की गर्मी उतर गई। अब उसे मालूम हुआ कि सब औरतें उसकी माँ की तरह नहीं हो सकतीं जिसको जो मर्जी कह दिया। वह मतलबी था। झट विनयपूर्वक बोला, "माँ जी मुआफ करना। मेरा कुछ स्वभाव ही ऐसा है। मैंने जानबूझ कर आपसे कोई बदतमीजी की हरकत नहीं की। मैं केवल इतना जानना चाहता था कि क्या इन्दु इधर आई थी?"

"हाँ आई थी।"

गोविंद क्रोध से लाल हो रहा था। मगर फिर भी वह उसी कृत्रिम नम्रता से बोला, "फिर कहाँ गई?"

"अजय का पता पूछती थी। मैंने कहा कि वह विदेश गया हुआ है। तीन साल बाद आयेगा। फिर वह चली गई। क्यों क्या बात है? वह लड़की तो बड़ी नेक है। मगर आज मायूस सी मालूम पड़ती थी।"

गोविंद का क्रोध ठण्डा हो गया। परन्तु क्षोभ बढ़ गया। बोला, "बात कुछ नहीं। सुबह-सुबह कहीं घूमने निकल गई थी। बाद में मैं भी इधर से जा रहा था। सोचा अगर यहाँ हुई तो साथ घर चलेंगे।" इतना कहकर गोविंद वहाँ से लौट आया। फिर सोचने लगा, "तब कहाँ गई। उसने आत्महत्या कर ली हो।" उसे थप्पड़ की याद आने लगी। उसने एक दफा अपने हाथ को थोड़ा सा देखा। वह घबराने लगा। उसके शरीर में पसीना पड़ने लगा। मगर थप्पड़ लगने पर कौन आत्महत्या करता है। तो फिर कहाँ गई। उसके मायके के पड़ोस में नहीं। उसके पुराने मित्र के यहाँ भी नहीं। तब गई तो कहाँ गई। वह

अजय को मिलने आई थी। वह यहाँ न मिला। हो सकता है उसने निराश होकर आत्महत्या कर ली हो। यही ख्याल गोविंद के मन में जड़ पकड़ गया। "कहीं हत्या के अपराध में मैं भी न मारा जाऊँ।" इस ख्याल से उसने इन्दु के खो जाने की खबर पुलिस में देना उचित नहीं समझा। यदि कभी उससे किसी आस-पास वाले ने पूछा तो कह देता कि वह अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ गई हुई है।

गोविंद ने इस घटना के सिलसिले में ज्योतिषी जी को अपना हाथ भी नहीं दिखाया। उसने कुछ ही दिनों में इन्दु को प्रायः भुला दिया और यथापूर्व अपने विलासमय जीवन में रत रहने लगा। उसी वाचाल स्त्री से वह अपनी कामाग्नि को शान्त करता रहा।

# दूसरी शादी

इन्दु के विभिन्न प्रार्थना पत्रों के फलस्वरूप कोई नियुक्ति आदि की सूचना में काफी समय लग गया। इस बीच में भुवनेश्वर को उसके प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। वह इन्दु के स्वभाव तथा व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसे उसके मुख से निकले शब्दों में एक अनोखा रस मिलता था। वह उसकी चाल और चितवन पर मुग्ध होने लगा। और फिर रूप पर तो वह परवाने की तरह फिदा हो रहा था। वह इन्दु को अपने साथ रखने की चिन्ता करने लगा। इसके अतिरिक्त उसे इन्दु की सारी दशा का पता लग चुका था। वह सोचता, "यह बिचारी दुखियारी है। शादीशुदा है। उसके प्रति मुझे किसी प्रकार की कुचेष्टा करना इसके घावों पर नमक छिड़कने के समान होगा।" इस विचार से वह अपनी मानसिक भावनाओं को अन्दर ही अन्दर दबाये रहता था। परन्तु ऐसा देखा गया है कि किसी चीज़ को जितना ज़ोर से दबाया जाये वह अवसर पाते ही उतने ही ज़ोर से ऊपर को भी उठ पड़ती है। यही दशा भुवनेश्वर की हो रही थी। वह निज भावनाओं को दबाता रहा मगर ऐसा कब तक चल सकता था।

एक दो स्थानों से इन्दु को नियुक्ति सम्बन्धी सूचनायें आईं। उसके पत्र भुवनेश्वर के पते पर ही जाते थे। भुवनेश्वर ने वे चिट्ठयाँ अपनी जेब में रख छोड़ी। उसे लग रहा था कि इन्दु अब जल्द ही उसे छोड़ कर चली जायेगी। अब वह चुपचाप नहीं रह सकता था। एक दिन इन्दु से कहने लगा, "तुमने बहुत से प्रार्थना पत्र भेजे हैं। शीघ्र ही

तुम्हारी नियुक्ति भी कहीं न कहीं हो जायेगी। परन्तु यदि तुम्हारी वर्तमान नियुक्ति चलती रहे तो तुम्हें कोई आपत्ति है ?"

"आपके अहसानों का बोझ मैं कभी ऊतार सकूंगी, मुझको ऐसी आशा नहीं है। जब तक मुझे कहीं काम नहीं मिल जाता तब तक मैं जिस सम्मान से यहाँ रहती हूं वह क्या कम है। अब मैं ज्यादा देर तक आप पर बोझ न डालूंगी।"

"इसमें बोझ की क्या बात है। तुम इतना सारा मेरा काम करती हो। उसके बदले में तुम्हें केवल दो वक्त का खाना क्या कीमत रखता है। मगर मैं एक बात जानना चाहता हूँ। तुम नौकरी क्यों करना चाहती हो। इसीलिये कि तुम्हें आदरपूर्वक भोजन, तन ढाँपने को वस्त्र तथा रहने के लिये मकान मिल जाये। वे सब चीजें यहाँ मिल जायेंगी, इसका मैं वचन देता हूँ। फिर नौकरी ढूंढने के लिये खामखाह परेशान होने की तुम्हें क्या आवश्यकता है ?"

इन्दु सरल थी। भुवनेश्वर का व्यवहार उसे अच्छा लगा। वह सोचने लगी, "इनकी बात सर्वथा उचित मालूम होती है। किसी और जगह जाकर भी नौकरी होगी और यहाँ पर भी नौकरी है। वहाँ भी किसी न किसी की मातहती होगी, सो यहाँ पर कम है। तब नौकरी क्या बुरी है।" धन संचय का न तो उसे शौक था और न ही अब तक उसे इस विषय में कोई अनुभव ही था। वह भुवनेश्वर की बात मान गई और उसने अब प्रार्थना पत्र भेजने बन्द कर दिये।

यूं ही सुख से उसके दिन बीतने लगे। वह कभी-कभी अपने रूप और स्वभाव के माधुर्य पर भुवनेश्वर से स्तुति-उक्तियाँ सुन लिया करती थी। धीरे धीरे दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति आदर और प्रेम बढ़ने लगा। विशेष रूप से भुवनेश्वर की नींद में खलल पड़ने लगा मगर वह भद्र व्यक्ति था। यह भद्रता उसे ऐसे जकड़ती थी जैसे भागते हुए घोड़े की लगाम झटके के साथ पकड़ ली जाती है। वह सोचता, "मैंने पहले उसे नौकरानी के तौर पर रखा। तब इसको कहीं

अन्यत्र नौकरी करने से रोक दिया। इसने यहीं पर नौकरी करना स्वीकार किया। अब कुछ और कहने पर तो वह कहेगी कि उंगली पकड़ कर पहुँचा पकड़ना चाहते हो। और मैं पहुँचा ही पकड़ना चाहता हूँ। कहीं वह मुझे दुष्ट ही न समझ बैठे। इन्हीं विचारों से वह मन मसोस कर रह जाता। मगर वह अन्तर्द्वन्द्व और बेचैनी को बहुत देर तक सहन न कर सका।

उस दिन दफ्तर में छुट्टी थी। आसमान पर बादल छाये थे। धीमी-धीमी बूंदें भी पड़ रही थीं। वाटिका में पक्षियों का कलरव सुनाई दे रहा था। वहाँ रंग-बिरंगे फूल खिले थे। उनकी महक समग्र वातावरण को सुरभित कर रही थी। बहुरंग तितलियाँ इधर से उधर उड़ रही थीं। हरि-हरि घास आंखों को तरावत पहुँचा रही थी। इन्दु प्रसन्नचित इसी वाटिका में फूल चुन रही थी। सूरज निकल आया था पतले-पतले बादलों से उसकी लाल-लाल किरणें इन्दु के मुख को द्विगुण आभा प्रदान कर रही थीं। ऐसे में इन्दु फूल का गुलदस्ता लिए सुप्रभा का प्रसार करती हुई चली आ रही थी। भुवनेश्वर अपलक उसे देख रहा था। ऐसा दिव्य रूप, ऐसी अलौकिक आभा, ऐसा यौवन, ऐसी चाल, ऐसी चपलता, ऐसी मुस्कान और ऐसा विराग उसने कभी कहीं न देखा था। वह अधीर हो रहा था। न जाने उसे अन्दर ही अन्दर से कौन प्रेरित कर रहा था। जो बात वह बहुत दिनों से अपने मन में छुपाये बैठा था आज वह उछल-उछल कर उसके मुख-प्रान्तों से बाहर निकलना चाहती थी। लाचार उसने निश्चय कर लिया कि वह इन्दु से स्पष्ट कह देगा। इतने में इन्दु पास में से निकल कर अन्दर कोठी में चली गई। भुवनेश्वर भी पीछे-पीछे अन्दर आ गया। इन्दु मेज़ पर रखे फूलदान में फूल सजाने लगी। और भुवनेश्वर सामने बैठा देखता रहा, जब इन्दु काम कर चुकी और बाहर चलने लगी, तब कहीं भुवनेश्वर के मुंह से केवल इतनी बात निकली। इन्दु तुम कहाँ जाने लगी हो। जरा बैठ जाओ।"

"फूलदान में पानी कम है और लाती हूँ।"

"पहले बैठ जाओ, फिर ले आना।"

वह बैठ गई।

'इन्दु मैं बहुत दिनों से तुमसे एक बात कहना चाहता था। मगर हमेशा डरता रहा। और अब भी डरता हूं कि तुम न जाने उसे कैसा महसूस करोगी।"

"कोई बात करने में डर किस लिए। मैं तो आपकी एक मामूली सी नौकरानी हूं। आप ऐसा कह कर मुझे शर्मिंदा क्यों कर रहे हैं।"

"इन्द तुम नौकरानी नहीं केवल रानी हो। तुझे तुमसे प्रेम हो गया है। तुम मेरे हृदय में उतर आई हो। मैं तुमसे केवल इतना पूछना चाहता था कि क्या तुम मुझ से शादी कर सकती हो। मैं किसी प्रकार की दुर्भावना या दबाव से तुमसे यह बात नहीं कर रहा हूँ। केवल अपने मन की बात कह रहा हूँ, तुम स्वतन्त्र हो। मेरा केवल सुझाव है। प्रार्थना है। तुम जो उचित समझो कहो। मैं तुम से विवाह करने को उद्यत हूँ।" इतना कह कर भुवनेश्वर उत्सुकता के साथ उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। वह उठकर कमरे में इधर से उधर चक्कर काटने लगा। उसे लग रहा था। जैसे उस के भाग्य का निर्माण अभी-अभी होने जा रहा है।

इन्दु एकाएक इस प्रकार के प्रश्न की आशा न रखती थी और वह उसके उत्तर देने के लिए तैयार न थी। वह सोच में पड़ गई कि क्या कहे क्या न कहे। वह सोच रही थी, "हम इतने दिनों से एक साथ इस मकान में रहते आये हैं। इस व्यक्ति ने इतनी अवधि में कोई कुचेष्टा नहीं की। किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया। एक भद्र पुरुष की भाँति मुझ से पेश आया, मेरे लिए कपड़े और आभूषण तक बनवाता रहा। मुझे सुखी रखने के हर प्रकार के यत्न किये। ऐसे चरित्रवान व्यक्ति से शादी कर ली जाये तो क्या पाप है मगर बात केवल इतनी है कि मेरी दूसरी शादी होगी, तो क्या दूसरी शादी करना भारतीय नारी

के लिए वर्जित है। मगर यह नारी के लिए भी क्यों वर्जित है पुरुष साधारण स्थितियों में भी कई-कई विवाह कर लेते हैं यदि कोई नारी मजूबरी में ऐसा कर ले तो उसमें संकोच की क्या बात है। इसमें पाप क्या है, मूल रूपसे तो न कोई पाप है न कोई पुण्य न कोई ठीक है न कोई गलत ये सब मानवकृत धारणाओं पर निर्भर करता है जीवन का लक्ष्य जीना है, और निर्विघ्न निर्वाह उस का लक्ष्य की पूर्ति ये दोनों बातें मुझे यहाँ प्राप्त हैं। अब मैं एक लम्पट, कपटी, मूर्ख, भीरू तथा शराबी पति का खिलौना बनी रह सकती थी तो एक चरित्रवान, सज्जन, वीर, सदाचारी पुरुष की संगिनी बनने में क्या दोष है।

इन्दु ने अपनी स्वीकृति दे दी। भुवनेश्वर को हजार स्वर्ग प्राप्त हो गये। वह खुशी से झूमने लगा। वह आकर इन्दु के पास मेज पर ही बैठ गया। इन्दु की गोरी-गोरी बाहें मेज पर पड़ी अत्यन्त आकर्षक लग रही थीं वह अब तक विचारमग्न थी, भुवनेश्वर के समीप आ जाने पर उसकी समाधि भंग हुई उसकी बाहें हिली और चूड़ियों की कर्णप्रिय ध्वनि भुवनेश्वर पर जादू का काम कर गई। उसने हठात इन्दु का मूंह चूम लिया।

इन्दु एक लम्बी अवधि से जंगल के उस फूल की तरह थी जिसकी सुगन्ध का किसी को पता तक न हो, आज उस फूल पर एक भंवरा मण्डराया, रसपान कर गया और फूल के खिलने को सार्थक कर गया।

दोनों का यह सुखद दिवस मधुर स्मृतियों में कट गया। भुवनेश्वर और इन्दु ने चर्च में जाकर अंग्रेजी रीति से विवाह कर लिया। पीछे घर जाकर दोनों ने एक दूसरे के गले में फूलों की मालायें पहनाई। इस समय घर में केवल यही दो प्रेमी थे। इन्दु ने जिस समय भुवनेश्वर के गले में पुष्पमाला डालने के लिए अपनी बाहें उठाईं भुवनेश्वर ने माला को ग्रहण करते ही उसे अंकपाश में भर लिया और उसके सिक्त-मधुर होटों पर एक प्रगाढ़ चुम्बन अंकित कर दिया। उसे रोमांच हो रहा

था। सारे शरीर में एक अजीब सनसनी सी दौड़ रही थी। जिससे सारा रक्त खौलता सा जान पड़ता था। परन्तु सिवाये संयम के इस समय कोई चारा न था। वह जाकर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। इन्दु मुस्कुरा रही थी।

शाम हो रही थी। इन्होंने चाय पार्टी में जाना था। होटल में चाय का प्रबन्ध था। वहाँ पर जाकर भुवनेश्वर के मित्र उसे बधाइयाँ देने लगे। कईयों ने उपहार भी दिये। पार्टी की समाप्ती पर भुवनेश्वर ने अपने सब अतिथियों का धन्यवाद किया। जिन्होंने उपहार दिये थे उन्हें सम्बोधित करते हुए उसने कहा, "जहाँ मैं आप सब लोगों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ इस अवसर पर पधारने के लिए वहाँ मैं आप से एक दो बातें और भी कहना चाहता हूँ। यह जो उपहारों की प्रथा है यह अच्छी नहीं है। मैं आपके प्रेम का आदर करता हूँ। मगर इस प्रकार हम कोई स्वस्थ परम्पराओं की स्थापना नहीं कर सकते। इस लिए मैं आपके ये सब उपहार वापिस करता हूँ मुझे आशा है कि इस विषय में आप मेरी सहायता करेंगे और इसको किसी प्रकार बुरा न मानेंगे।" जिसने घड़ी लाई थी, उसकी घड़ी वापिस हो गई और जिस ने टाई लाई थी उसकी टाई लौटा दी गई। केवल एक व्यक्ति का उपहार स्वीकार कर लिया गया और वह था बच्चे का छनकणा। इसी प्रकार कुछ स्त्रियों ने गुलदस्ते लाये थे वे स्वीकार कर लिए गए। इस प्रकार हँसी खुशी का बातावरण में यह विनोद भरी चाय गोष्ठी विसर्जित हो गई। सब लोग अपने-अपने घर को चले गये। नवविवाहित युगल भी अपनी कोठी में प्रविष्ठ हुआ। रात काफी बीत चुकी थी।

भुवनेश्वर के शुभकाँक्षियों ने आज उसकी सेज को विशेष रीति से सजाया था। इन्दु उसी सेज पर बैठी थी जब कि भुवनेश्वर ड्रेसिंग रूम में कपड़े बदल रहा था। इस समय इन्दु कुछ उदास सी दिखाई देती थी। उस भुवनेश्वर से चुम्बन तथा आलिंगन में झिझक महसूस न हुई थी। परन्तु रात्रि के अन्धकार में अब उससे जो कुछ होने वाला

था उसकी स्मृति में वह कुछ उदास हो रही थी। उसे प्रथम-पुरुष सह शैया का डर न था बल्कि उसको कुछ वैसे ही आत्मग्लानी का सा आभास हो रहा था। वह सोच रही थी, "यह कैसा अधम कृत्य है परन्तु वैवाहिक जीवन इसके बिना अधूरा ही है। वह इन्हीं विचारों में खोई हुई थी कि भुवनेश्वर आ गया। वह उसके पास जा बैठा। बैठते ही उसकी आंखों से आँखें चार करते हुए उसने आलिंगन किया और रसीले होटों को चूम लिया। इतनी देर थी कि वह कामोत्तेजना के नशे में डूब गया। क्षण भर में उसने इन्दु को अंक में भर लिया, उसका आलिंगन और भी प्रगाढ़ हो गया। और आगे वही हुआ जिसका वर्णन करने में लाज आती है। इन्दु भी यौवन के इस मद का आनन्द उठा रही थी

इससे पहले एक लम्पट ने इसके रूप और यौवन का आनन्द लूटा था अब वह स्वयं एक सुन्दर नौजवान के रूप और यौवन का आनन्द लूट रही थी मगर इसमें और उसमें अन्तर था। पहला केवल लुटेरा था, वह लूटता था। मगर अब दोनों बाँटते थे इन्दु का जीवन सुख से कटने लगा।

# चरित्रवान पति

इन्दु पढ़ी लिखी थी अब उसको ऐसा ही पति भी मिला था। ऊँचे समाज में वह आने-जाने लगी। कुछ ही अर्से में वह स्थानीय आल इण्डिया विमेन कानफ्रैंस की मुख्य कार्यकर्ता बन गई। उसकी समाज कल्याण सम्बन्धी रुचि और तत्परता से नारी समाज बड़ा प्रभावित हुआ।

अपने नगर की रैडक्रास सोसाइटी की वह सैक्रेटरी चुन ली गई।

जहाँ इन्दु की सामाजिक कर्मण्यता बढ़ी वहाँ उसके रहन-सहन, वस्त्राभूषण आदि सब वस्तुओं में एक भारी परिवर्तन आ गया। वह खूब बन-ठन कर रहती थी। जिन लोगों ने उसे पहले एक साधारण नौकरानी के रूप में देखा था वे उसके चरित्र पर छींटे फेंकने लगे। रूढ़ि समाज के स्त्री-पुरुष तो उसे सामने से निकलता देख नाक सिकोड़ दिया करते थे। पीठ पीछे उसके विषय में तरह-तरह की बातें बनाया करते थे। मगर इन्दु एक प्रभावशाली नारी के रूप में उदय हो रही थी। उसका चरित्र उज्जवल और स्वभाव अत्यन्त विनम्र था। जो लोग पीठ पीछे उसके चरित्र सम्बन्धी तरह-तरह की बातें बनाया करते थे उससे साक्षात होते ही वे भीगी बिल्ली की तरह चुपचाप चले जाते थे। आखिर वे करते भी क्या। किसी में कोई बुराई हो तो कुछ कहा भी जाये मगर जब कपोल कल्पित लाँछन लगाने का यत्न किया जाये तो वे कब तक टिक सकते हैं।

जिस नगर में इन्दु अब रहा करती थी वहाँ से ५ मील की दूरी

पर एक छोटा सा कस्बा था। इस कस्बे में इन्दु के पिता नौकरी कर चुके थे। इसलिये इन्दु भी वहाँ रह आई थी। उन दिनों वह मैट्रिक में पढा करती थी और लगभग तीन वर्ष इस कस्बे में रह चुकी थी।

इस कस्बे में अधिकतर अनपढ़ किसान, ब्राह्मण और बनिये रहा करते थे। दोनों जातियाँ अपने रस्मो-रिवाजों को ससार भर में सर्व-श्रेष्ठ समझती थीं। धर्म ईमान, विश्वास और परम्परा के विचार से इन दोनों जातियों में ऊँट और गधे की मित्रता थी। पहला दूसरे के स्वर की और दूसरा पहले के रूप की प्रशसा खूब करते थे।

उनकी औरतें हाथ-हाथ लम्बा घूँघट निकालती थीं। सारा दिन उसी औरत की चुगली चर्चा में लगाया करती थी जो उनमें उपस्थित न हो। कभी उसके घर की बात चलती तो कभी उसके पति की आलो-चना होती। कभी कौन क्या खाता है और कौन क्या पहनता है इसी चर्चा में दिन निकल जाता था।

इस कस्बे में मर्दों में शराब और विलासिता का बोल बाला था। शराब के अतिरिक्त पोस्त, भंग, चरस तथा जूए आदि के भी कई अड्डे यहाँ थे। यहाँ के ये पुरुष बड़े कट्टर, रूढ़ि और अभिमानी थे। इनकी जीवन-चर्या के निश्चित मापदंड थे। उनसे बाहर जरा भी कोई गया कि वह उनका कोपभाजन हो गया।

इनकी औरतों का चरित्र बडा निम्न था। घूँघट के बीच में से आँख मारना बुरा न था परन्तु घूँघट उठाना भारी पतन समझा जाता था। इसी कस्बे में इन्दु की बहुत पुरानी सखियाँ थीं। एक दफा उस इच्छा हुई कि अपनी पुरानी सहेलियों से मुलाकात की जाये। उसने अपने पति से सलाह करके अगली छुट्टी के दिन वहाँ जाने का प्रोग्राम बना लिया। उस दिन ये दोनों उस कस्बे को चले गये। वहाँ जाकर वह अपनी बहुत सी सहेलियों से स्नेहपूर्वक मिली। उनसे बातें की और पत्र व्यवहार आदि के लिये भी कहा। उसकी पुरानी सखियाँ उसके रूप, यौवन और वैभव को देखकर दंग रह गईं। कुछ खुश हुईं और

कुछ जल गई। इन्दु मेल-मिलाप में सारा दिन उस कस्बे में बिताकर सायंकाल को खुशी-खुशी अपने पति के साथ वापिस चली आई। बहुतों को फिर आने का वचन भी दे गई थी।

इन्दु जिन दिनों इस कस्बे में रहा करती थी तब वह लड़की थी। साधारण से वस्त्र उसके शरीर पर होते थे। आज वह उन लोगों में गई तो उसके वस्त्र सुन्दर थे। परदे की न तो उसे आदत थी और न ही शिक्षा। वह निर्भय होकर सब स्त्रियों तथा पुरुषों में खुले मुंह चलती रही। इस जगह से वापिस जाने पर पहले नारी समाज में भी पहुँच गई। मगर याद रहे कि इस आलोचना का आधार केवल यह था कि वह बिना घूंघट नारियों में तो क्या पुरुषों में भी चलती रही। इस लिए वह बड़ी निर्लज और पतित थी। कोई कहता कि पैसा आदमी की इज्जत बिल्कुल बरबाद कर देता है। हालाँकि बणियों से लालची पैसे का पीर दूसरा शायद ही कोई होगा। मगर वही बणिये पैसों को पास का आधार सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे थे।

बहुतों ने इस आलोचना में और नमक-मिर्च लगाना शुरू कर दिया किसी ने कहा, "अजी, यह तो अपने जमींदार साहब के लड़के को आँख मार रही थी।" एक छोकरा हाल ही में नगर हो आया था। उसने शाम को शराबखाने में अपने मित्रों से कहा, "क्या कहते हो, वह तो पेशा करती है। शहर में दस-दस उसके पीछ फिरते हैं।" क्यों फिरते हैं यह उसने नहीं बताया। 'अलबत्ता इस मिथ्या-भाषण की पुष्टि में उसने यह भी कह दिया, "जनाब में अभी नगर से हो आया हूँ। मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

ये सब बातें इस छोटे से कस्बे में दो ही दिनों में सूखे घास की आग की तरह फैल गई। इस कस्बे के साथ वह इलाका भी था जहाँ का रहने वाला भुवनेश्वर था। उसके सम्बन्धियों तक भी ये सब बातें पहुंच गई। उन्होंने बिना प्रमाणों के सब बातें ज्यों की त्यों ठीक समझी। भुवनेश्वर के सबसे नजदीकी रिश्तेदार ने भुवनेश्वर को पत्र

लिखा। उसमें वे सब बातें लिख दीं जिनकी वहाँ आम चर्चा थी। साथ में भुवनेश्वर को कुल और मर्यादा का वास्ता देकर बहुत ठोका और फटकारा कि यदि उसे शादी ही करनी थी तो क्या वही एक गंवार और फाश औरत रह गई थी। उसके जैसे उच्चाधिकारी के लिए ऊँचे से ऊँचे चरित्र वाली श्रेष्ट कुल की बहुत प्राप्त हो सकती थीं। इस के अतिरिक्त गाँव के जमींदार की युवा लड़की की बात लिख दी जो कई सालों इंग्लैंड में रहकर अपने गाँव लौट आई थी। उसके सम्बन्ध में लिखा था कि वह इंग्लैंड में अंग्रेजी ठाठ से रहती थी, मगर गाँव में आकर वह भी गाँव के वस्त्र भूषण डाल कर वहाँ के रीति-रिवाजों के अनुसार रहती है। भुवनेश्वर को यह पत्र पढ़ कर ठेस लगी। तब उस ने इन्दु से कहा, "प्यारी, कस्बे के लोग तुम्हारी वहां की यात्रा से बड़े प्रभावित हुए हैं। कहते हैं कि इन्दु बड़ी मिलनसार नारी है। यह देखो उन्होंने तुम्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया है। भुवनेश्वर के भाषण में क्षेप और दृष्टि में व्यंग था।

इन्दु पत्र को पढ़कर धक से रह गई। वह अत्यन्त भावुक थी। और वह सब कुछ सहन कर सकती थी परन्तु अपने चरित्र और मर्यादा पर किसी प्रकार के छींटे वह सहन नहीं कर सकती थी। उसके हृदय में यह बात एक सूई की तरह चुभती रही। वह सोचने लगी, "मेरे जीवन की अन्य बाधायें समाप्त हुई। मैं कुछ आराम का साँस लेने लगी। तब यह खामखाह की चिन्ता बीच में खड़ी हो गई। झूट बोलना इतना आसान क्यों है। झूठ बकते समय लोगों की जबानें लरजा क्यों नहीं जातीं। वह चिन्ता और क्षेम से उद्विग्न हो उठी थी।

भुवनेश्वर शक्ल देखते ही भांप गया। वह सेव काट रहा था। उसने एक फांक को मुँह में डालते हुए कहा, "अरे वाह ! तुम किस लिए चिन्ता करती हो। यदि ऐसी निराधार बातों पर विचार करने में हम अपना समय खो दें तो कैसे काम चलेगा। लोग क्या नहीं कहते।

क्या हम किसी की जबान पकड़ सकते हैं। जिसके मन में जो आता है बक देता है। निर्मूल बातों की खोज करने में हम किस लिए मग्ज-खपाई करें।"

इन वाक्यों से इन्दु को साँत्वना तो हुई मगर उसको ज्ञान पिपासा बनी रही। वह हर बात की तह में जाना पसन्द करती थी। वह पति से बोली, "अच्छा यह तो माना कि ये सब बातें निर्मूल और कपोल कल्पित हैं। मगर लोगों में तो फैली हुई हैं। यह भी मैं मानती हूँ कि किसी की जबान नहीं पकड़ी जा सकती। परन्तु जो गाँव की उस लड़की का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है कि वह इग्लैंड में से आई है और अब वहाँ पर गाँव के लोगों की तरह रहती थी और वैसे ही वस्त्रादि पहनती है जब कि इंग्लैंड में वह अंग्रेजी ठाठ से रहती थी। इसको दृष्टिगोचर रखते हुए मैं यह अवश्य जानना चाहती हूँ कि मेरे लिए किस प्रकार रहना उचित है। क्या ठीक है और क्या गलत है।"

भुवनेश्वर कुछ गम्भीर होकर बोला, "इन्दु, तुम जैसे भी रहोगी हमेशा के लिए लोगों के मुंह बन्द कर सकोगी। तुम्हें बेकार की चिन्ता में नहीं उलझना चाहिए। क्योंकि संसार में अच्छाई और बुराई के अपने-अपने मापदण्ड हैं। रहा सवाल यह कि तुम्हें किस प्रकार रहना चाहिए। तो मैं संक्षिप्त में यही कहूँगा कि तुम्हें वैसे ही रहना चाहिए जिस प्रकार तुम अभी रह रही हो। उस लड़की की मिसाल ही ले लो इसमें देखने वाली बात यह है कि वह लड़की गांव में जाकर जैसी रहती है, इंलैड में वैसी नहीं थी। लोग केवल इतना ही सोचते हैं कि वह यहां आकर ऐसी बन गई है। इस पत्र में लिखा तो है कि उसने दूसरे दिन ही गौन आदि बदल कर वहां के वस्त्र डाल लिये। मगर उस के तर्क की पुष्टि तब होती यदि वह इग्लैंड में भी वैसे वस्त्र डाला करती जो उसने गांव में डाले हैं। फिर भुवनेश्वर क्षण भर के लिए चुप रहा। चाकू को मेज पर रखते हुए उसने फिर कहा, "बात वास्तव में यह है कि इस विषय में हमारे सम्बन्धों के दो पहलू हैं।

एक मानसिक, दूसरा व्यवहारिक। हमारा मानसिक सम्बन्ध उन लोगों से सम्बन्धित है, जिनसे व्यवहारिक सम्बन्ध नहीं है अर्थात हम मानसिक रूप से उन्हीं लोगों से सम्बन्धित हैं जो हमारे जन्म स्थान में रहते हैं। और व्यवहारिक सम्बन्ध हमारा उन लोगों से है जिन में रहते हैं तो इन मानसिक और व्यवहारिक सम्बन्धों में से हम साधारणतया केवल एक ही का अनुकरण कर सकते हैं यदि वर्तमान समाज म अपनी हंसी उडानी हो तो मानसिक गुट से चिपके रहना चाहिए। और यदि आदर पूर्वक रहना हो तो व्यवहारिक गुट का अनुसरण करना चाहिए। वह लड़की व्यवहारिक गुट का अनुसरण करती है। इसीलिए इंग्लैंड में उसने गौन और गाँव में जाकर घबरा डाल लिया होगा। इसी प्रकार जब तक तुम इस समाज में हो तब तक इस समाज में जो कुछ मान्य और उचित है वही करो, जैसा कि तुम कर रही हो। इसलिए तुम्हारी यह चिन्ता निर्मूल और निराधार है।'

यह सुन कर इन्दु के मन की अशाँति दूर हो गई। शिक्षित और साध्य समाज में उसका सम्मान और आदर खूब बढ़ रहा था। लोग उसकी योग्यता, तत्परता और परमार्थी भावनाओं से बहुत प्रभावित हुए जा रहे थे। परन्तु अशिक्षित समाज में वह यत्न करने पर भी सम्मान न पा सकी। इसके लिए उसका नारी होना ही अभिशाप बन गया था। वह साधारण और अनपढ़ जनता में उनके कल्याण के लिए कुछ यत्न करना चाहती थी परन्तु वे एक ऐसी नारी को जो खुले मुँह चलती फिरती रहे चरित्रहीन समझते थे।

लोग चाहे जो समझें। इन्दु को उससे सरोकार नहीं था। वह कोई मिनिस्टर नहीं बनना चाहती थी। जिसके लिए लोगों का वोट आवश्यक है। वह अपने दैनिक समाज और पति का सम्मान प्राप्त कर चुकी थी। यही उसक लिए काफी था और वह प्रसन्न थी।

# असहाय विधवा

भुवनेश्वर के पास पैत्रिक सम्पत्ति कोई न थी। उसके पिता भी उसी की तरह नौकरी किया करते थे और उसी के बल बूते पर उन्होंने भुवनेश्वर को शिक्षा दिलाई थी। गाँव में जो कुछ मामूली सा मकान था उसे भाइयों ने हड़प लिया था। इसलिये भुवनेश्वर के पास जो कुछ सम्पत्ति थी वह उसकी उच्चशिक्षा और निज बाहुबल था। यह सम्पत्ति कोई कम न थी। भुवनेश्वर मेहनती, इमानदार और चतुर था। इसी कारण उसे अच्छी नौकरी मिली थी और वह बेफिक्र था।

भुवनेश्वर और इन्दु के वैवाहित जीवन के दो वर्ष बीत गये थे। इनका एक लड़का भी हो गया था जो कि अब छः महीने का हो चुका था।

पहली सन्तान माता-पिता के लिये विशेष प्रसन्नता, आकर्षण और कौतुहल का कारण होती है। माता-पिता दोनों घण्टों उससे बातें करने और अपने आप ही उसकी ओर से उत्तर भी दिया करते थे।

बच्चा होने के बाद माँ का ध्यान पति की उपेक्षा अपने पुत्र पर अधिक केन्द्रित हो जाता है। ऐसी दशा में पति उपेक्षति सा अनुभव करता है। और कई बार इसी कारण मियां-बीबी में एक खिचाव-सा भी पैदा हो जाता है। इस अवस्था में समझदारी से काम लेने वाले दम्पत्ति कटुता से बचाव कर सकते हैं। मगर बेसमझ बड़ा भारी दुख उठाते हैं।

कभी-कभी ऐसा हो जाया करता था कि भुवन दफ्तर जाने लगते तो इन्दु पहले की तरह उसे विदा करने के लिये उपस्थित न हो पाती।

इसी प्रकार सायंकाल को घर आने पर भी पहले का सा स्वागत सम्भव न था। इन्दु के यत्न करने पर भी कभी न कभी चूक हो ही जाती थी। वह मन चाहे चुम्बन, आलिंगन हर समय न चल सकते थे। शुरू शुरू में भुवनेश्वर को यह उपेक्षा अखरी भी। मगर वह संयमी था। जल्द-बाजी से काम नहीं लेता था। धीरे-धीरे उसे मालूम हो ही गया कि गृहस्थ जीवन सचमुच अब शुरू हुआ है। इस जीवन में कामवासना व उच्छृंखला की उपेक्षा उत्तरदायित्व अधिक है। तब भी भुवन चुम्बन के लिये कोई न कोई अवसर देख ही लिया करता था। अवसर मिल भी जाया करते थे। मगर किसी दिन ऐसा भी होता था कि कोई अवसर ही न मिलता तो वातावरण न होता था।

एक दिन की बात है कि इन्दु अपने बच्चे के मुख को चूम कर कुरसी पर बैठी उसके लिये स्वेटर बुनने में लग गई। ज्यूं ही इन्दु ने अपने पुत्र का मुख चूमा कि भुवन ने उसे उठा लिया और झट से बच्चे की उसी गाल को चूम लिया जहाँ इन्दु के अधरों ने स्पर्श किया था। चलो प्रत्यक्ष न सही, अप्रत्यक्ष रूप से ही दिल की तसल्ली हो गई। तब वह कुरसी पर बैठ कर अपने पुत्र से वार्तालाप करने लगा। "बेबी, डेडी कल यहाँ से जा रहे हैं।" बेबी चुप था। माँ सिलाइयों को देख रही थी। उसी तरह नजर बुनने पर रखे बोली, "कहाँ ?"

"बेबी हम बहुत दूर जा रहे हैं।"

इन्दु की सिलाइयाँ रुक गईं। सामने देखती हुई बोली, "क्या आप मजाक कर रहे हैं ?"

भुवन ने उसकी आखों में आखें डालते हुए कहा, "नहीं प्रिय, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। सीमा पर कुछ ऐसी घटनायें हुई हैं जिनके निरीक्षण के लिये मुझे वहाँ पहुँचने का आदेश हुआ है कार्य अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण है। सारे देश की रक्षा का भार सेना के सिर पर ही तो होता है।"

इन्दु ने प्रश्नात्मक ढंस से कहा, तो हम भी साथ चलेंगे।"

"प्यारी स्थिति ऐसी नहीं है कि तुम्हें भी साथ ले जा सकूँ। और फिर ऐसा करने की आवश्यकता भी क्या है। केवल एक महीने के लिये जाना है। उसके पश्चात मैं फिर यहीं आ जाऊँगा। तुम्हारे लिये सब तरह का प्रबन्ध कर जाऊँगा, जिससे मेरे पीछे तुम्हें किसी किस्म का कष्ट न हो।"

इन्दु उदास हो गई और कुछ न बोली। भुवन उसकी उदासी को समझ गया। वह बोला, "प्रिया तुम पहले बड़ा हौसला और हिम्मत रखा करती थीं। यहाँ तक कि तुमने सारा जीवन अकेले ही व्यतीत करने का निश्चय कर लिया था। अब तुम छोटी छोटी बातों से क्यों घबरा उठती हो। मैं कौन से लम्बे अर्से के लिये जा रहा हूँ।"

यह मैं भी जानती हूँ कि केवल एक मास की बात है। किन्तु न जाने मेरा मन कैसा हो गया है कि छोटी छोटी बातों पर घण्टों उधेड़-बुन करती रहती हूँ। मेरा दिल इतना दुर्बल हो गया है कि मुझे आपके बिना एक दिन काटना भी कठिन मालूम होता है। कई बार मैं बैठी बैठी भयभीत सी हो जाती हूँ। मैं आपसे पूछना चाहती थी कि यह भय क्या है। मैं डरती क्यों हूँ।"

भुवन ने कहा, "जब व्यक्ति सहारे का अभ्यस्त हो जाता है तो वह कुछ दुर्बल हो जाता है। बिना सहारे रहने की उसकी आदत नहीं रहती। मैं स्वयं भी ऐसा अनुभव करता हूँ कि तुम्हारे बिना सहारे मेरा गुज़ारा कैसे चलेगा। रही बात भय की प्रिय, भय एक ऐसी मानसिक व्यवस्था है जिसका जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। जब तक जीवन है, तब तक भय से कोई मुक्त नहीं हो सकता। हां जड़ पदार्थ भय से मुक्त है। भय का मूल आधार तो आत्म-रक्षा है। परन्तु प्रत्यक्ष अज्ञान अथवा अन्धकार है। उदाहरणार्थ जब हम रात के अन्धेरे में कहीं चलते हैं तब हमारी आँखें स्पष्ट रूप से इधर-उधर नहीं देख सकतीं। हमारे चारों तरफ अन्धकार होता है। तब हम डरते हैं कि न जाने यहाँ आगे क्या होगा। कुछ भी हो हमें उसकी चिन्ता किस लिये

होती है ? इसलिए कि हमें अपने प्राणों का भय लगा रहता है । प्रत्यक्ष रूप से तो हम ऐसे डरते हैं कि वहाँ कुछ होगा । और हम अपने दोस्तों में भी इसकी इतनी ही व्याख्या करते हैं कि डर लगता है । परन्तु मूल रूप से डर इसलिये लगता है, क्योंकि हम प्राणों की रक्षा चाहते हैं । यही कारण है कि हम जिस रास्ते से दिन के समय में बिल्कुल निडर और बेफिक्री से चले जाते हैं उसी रास्ते में रात को थर थर काँपते हैं ।"

"तब उसकी दवा क्या है ?" इन्दु ने पूछा ।

"उसकी दवा—उसकी दवा प्रकाश है । ज्ञान है और कुछ हद तक सजातीय का साथ । बहुत से लोग तो भयभीत होने पर भगवान का जाप करते हैं । हर-हर, राम-राम, कहते हुये भयप्रद स्थान से आगे बढ़ जाते हैं । मगर यह कोरा भ्रम है । हर हर करने से भयमुक्त होना असम्भव है । यदि ऐसा होता तो उन्हें भयावने स्थान पर बैठकर भी नहीं डरना चाहिये था । विपरीत उसके वे सजातीय समाज की ओर भाग जाते हैं । जब वे अपने घर समाज में पहुँचते हैं तब उनका भय समाप्त होता है । तब यदि राम नाम भयमुक्त कर सकता तो डरने वाले भगवान को छोड़कर सजातीय लोगों में दौड़ कर पहुँचने को क्यों आकुल होते हैं । प्रकाश किस लिये ढूँढते हैं । इसी लिये कि वहाँ भय-मुक्त होने की आशा होती है ।

जब मनुष्य को अपनी सीमित शक्ति के कारण अपने प्राण खतरे में मालूम होते हैं और उसकी सहायता करने वाला उसे कोई दिखाई नहीं देता तब वह किसी देवी शक्ति को सहायता के लिये प्रार्थना करता है । इस प्रकार देवी शक्ति की आवश्यकता अनुभव हुई और लोगों ने उसे ईश्वर की उपाधि दे दी । इस प्रकार प्राणरक्षा के अज्ञान के कारण भय के कारण ईश्वर की उत्पत्ति हुई ।"

इस उपदेश से इन्दु की ज्ञान पिपासा की तृप्ति तो हुई मगर मन को शान्ति न मिल सकी । उसे भुवन के चले जाने का भय खाये जा रहा था । बोली, "भय और उसके आदि अन्त के सिद्धान्त को मैं समझ

गई। मगर क्या ऐसे नहीं हो सकता कि आपका जाना किसी प्रकार स्थगित हो जाये ?"

"प्यारी मैं तुमसे ऐसी आशा न करता था। तुम्हें वीरांगना होना चाहिये। मेरी सेना की नौकरी है। इसमें टालमटोल नहीं चल सकता और टाला भी किस लिये जाये। कोई कारण हो तब तो बात बने भी। मगर मैं ऐसी कोई वजह ही नहीं देखता।"

इन्दु के पास अब न कुछ कहने को था और न उसने कुछ कहा ही। वह चुप हो रही और स्वेटर बुनती रही।

अगले दिन सुबह सुबह भुवनेश्वर अपने बेबी का मुंह चूम कर जाने को तैयार खड़ा था। इन्दु कोट कन्धे पर रख गई। भुवनेश्वर ने प्रगाढ़ालिंगन में भर कर उसके अधरों को चूमा। इन्दु ने स्वामी की पीठ पर विदायगी के हाथ फेरे। भुवन बाहर निकल आया। इन्दु ने बेबी को द्वार पर लाया उसके हाथों को अपने हाथों से ऊपर उठाया। बेबी पिता को देख कर बोला, "पापा।" भुवनेश्वर हाथ उठा कर बोला, "बेबी, बाई बाई-टाटा।" तब भुवन मोटर में बैठ कर रवाना हो गया। इन्दु मोटर को तब तक देखती रही जब तक कि वह आँखों से ओझल न हो गई।

एक के बाद एक दिन बीतने लगा। स्वामी की कुशल क्षेम के पत्र आते रहे। इसी प्रकार बीस दिन बीत गये। दस दिन शेष थे। इन्दु अपने प्रिय के शुभागमन की मधुर कल्पनाओं में खोई हुई थी। वह सोच रही थी, "वह आयेंगे तो मैं दौड़ कर उनसे लिपट जाऊंगी। वह मेरा मुंह चूमेंगे। मैं उन्हें बिठाकर चाय पिलाऊंगी और अपने हाथों से फल काट-काट कर उन्हें खिलाऊँगी।" तब वह अपने बेबी से कहने लगी, "बेटा, तेरे डैडी अब जल्दी ही आ जायेंगे।

इतने में दरवाजे पर टक-टक की आवाज सुनाई दी। वहाँ पोस्ट-मैन था, जिसे देखते ही इन्दु दौड़ी आई और उससे तार ले ली। पोस्ट-मैन गर्दन झुकाए चला गया और इन्दु शीघ्रता से उसे खोलकर पढ़ने

लगी। उसमें प्रलय की सूचना थी। उसके पति का सीमा पर किसी दुर्घटना में देहान्त हो गया। इन्दु पर हिमालय पहाड़ गिर पड़ा. परन्तु वह अब भी जीवित थी। इन्दु ने अपने बेबी को उठाकर छाती से लगा लिया और फिर उसे पंगूड़े में डालकर स्वयं फूट-फूट कर रोने लगी। इसी बीच वहाँ अनेक सैनिक अधिकारी और अन्य नर-नारी भी आने लगे थे। और उसे सान्तवना देने लगे। जैसी करुणाजनक घटना थी उससे भी करुणाजनक यह दृश्य था जिसका वर्णन लेखन शक्ति से बाहर है।

इन्दु का सर्वस्व लुट गया। वह एक बार फिर इस भरे संसार में अकेली थी। यदि अब उसका कोई साथी था तो वह था एक अबोध अनाथ और अल्पायु बालक। जो इन्दु के लिये घड़ी भर पहले एक महान वरदान था और सम्भवतः अब अभिशाप हो।

इन्दु कुछ दिनों तो इसी बड़े मकान में रही, मगर अब अधिक वहाँ न ठहर सकती थी। वह अब शहर के दूसरे छोर पर एक मामूली से कमरे में रहने लगी। थोड़े ही दिनों में उसकी दरिद्रावस्था हो गई। वह अपने इस नगर के सब सम्बन्धों को एक दम तोड़ चुकी थी। बल्कि वह अपने पुराने भिज्ञ समाज से दूर रहना चाहती थी। उसके मन में तरह-तरह के विचार आया करते थे। वह सोचती, "यदि मैं अकेली होती तो भी किसी न किसी तरह शेष जीवन काटने का प्रबन्ध कर लेती। अब यह छः महीने का बालक है। इसको फैंककर कहाँ जाऊँ। यह बालक पड़ा दुर्भाग्य वाला है। इसके पैदा होने के बाद ही भुवन की मृत्यु हुई। सचमुच यह बड़ा दुष्ट है। इसी ने मेरे सुखी जीवन को नष्ट किया है। यह मेरे लिये जीवन पर्यन्त अभिशाप बना रहेगा। मैं उसका गला घोंट दूंगी। अभागा, पापी कहीं का।" इन्दु परिस्थितियों के क्रूर प्रहारों से अन्धी हो रही थी। उसे भुवनेश्वर की याद आ रही थी। बच्चा सो रहा था। उसने उसके मूंह पर से कपड़ा हटाया। कैसा प्यारा मुखड़ा था उसका। कपड़ा उठते ही बच्चे ने आँखें खोल दीं।

उसकी शक्ल उसके पिता से बहुत मिलती थी। माँ के हृदय में मातृप्रेम उमड़ आया। वह उसका गला न घोंट सकी, उल्टा उठाकर छाती से लगा लिया। दस-दस बार उसका मुँह चूमने लगी। मन ही मन बोली, मेरे लाल, तू मेरे दिल का टुकड़ा है। तेरे ही सहारे से मेरे ये दिन कट रहे हैं। मैं बड़ी अधम हो गई हूँ। मेरे मन में कभी-कभी बहुत बुरे विचार आते हैं। तू उनकी निशानी है। मैं अपनी जान देकर तेरी रक्षा करूँगी। तेरे खिले फूल से हँसते मुख को देखकर मैं सब दुखों को भूल जाऊँगी।

इन्दु के पास जो कुछ धन सम्पत्ति थी उसके सहारे उसने बड़ी दीन और दरिद्रावस्था में यहाँ पर छः महीने निकाल दिये। अब उसके पास एक फूटी कौड़ी न थी। दूध की बोतल थी पर दूध की एक बूंद न थी। छाती का दूध बच्चे को पहले ही बन्द किया जा चुका था। इसलिये वह बिल्कुल सूख गया था। उसके पास तवा परात और पतीले थे मगर आटा दाल कुछ न था।

इन्दु पढ़ी लिखी थी परन्तु अनुभवहीन थी। पहले परिस्थितियों ने उसे शिक्षा का लाभ नहीं उठाने दिया और अब उसकी विद्या भी शिथिल हो गई थी। इसके अतिरिक्त वह नारी थी। दूरदर्शिता का उसमें अभाव था। वह एक लता थी। जब तक उसे वृक्ष का सहारा था वह खूब फली-फूली, ऊँची चढ़ी। वृक्ष गिर गया, लता भी भूमि पर आ पटकी और हर तरह से रौंधी जाने लगी।

कुछ तो इसका यह छोटा बालक एक बन्धन था जिसको छोड़कर वह एक क्षण के लिये भी कहीं न जा सकती थी और कुछ वह स्वयं अल्पदर्शी हो गई थी। इन्हीं कारणों से वह इतने दिनों तक किसी ऐसे निर्णय तक न पहुँच सकी कि उसने भविष्य के लिये क्या करना है। आखिर वह दिन आ गया जब उसके पास एक दाना बाकी न था। अब वह आज की बात कल और कल की बात फिर कल पर न टाल सकती थी। इसके अतिरिक्त बालक को आज सुबह से कई बार ज्वर

आता और जाता रहा। इससे इन्दु को उसकी दवा का फिक्र होने लगा। मगर दवा और डाक्टर के लिये पैसे चाहिये। बालक का ज्वर जब चढ़ता था तो बहुत तेज हो जाता था। इन्दु घबरा रही थी। शाम हो रही थी। बच्चा अभी-अभी सोया था। इन्दु ने अपने मस्तक पर हाथ रखा, "कहीं मगने जाऊँ, हाथ फैलाऊँ, सड़क पर खड़ी होकर पैसा-पैसा पुकारूँ।" इतना सोचकर उसे यकायक गोविंद के शब्द याद आ गये। 'बाजार में खड़ी होकर पैसा-पैसा पुकार।" इस स्मृति से उसके तन पर पसीना चूने लगा। वह बोल उठी, "कभी नहीं, मैं माँगने नहीं जाऊँगी। तब क्या और विवाह कर लूं। मैं बच्चे की माँ हूँ, मुझसे कौन शादी करेगा। कौन हमारे बोझ को लेकर दुखी होना चाहेगा।" अब वह अपने को धिक्कारने लगी। "मैं कैसी नीच हूँ। दो शादियाँ कर चुकी, फिर तीसरी की बात सोच रही हूँ। शादी करना भी क्या कोई व्यापार है। मगर मैंने व्यापार की दृष्टि से दूसरी शादी न की थी। वे तो हालात ही ऐसे थे। तब शादी करने में बुराई क्या है। इसमें पतन कहाँ है। बुराई किसे कहते हैं। मूल रूप से न कोई बुराई है न अच्छाई। यह तो केवल सम्मति की बात है। धारणामात्र है। कोई कार्य किसी की दृष्टि और सम्मति में नीच है तो वही कृत्य दूसरे की दृष्टि में ऊँचा और वांछनीय है। कोई कुछ भी करता है, जब तक वह उसे करता है ठीक और उचित समझ कर करता है। और जब वह यह समझ लेता है कि अमुक कार्य गलत है, अनुचित है तो वह उसे छोड़ देता है अथवा छोड़ने की चेष्टा अवश्य करता है। ब्राह्मण ईश्वर के नाम से भीख माँगने में कोई पाप नहीं पुण्य समझता है।" इन्दु फिलास्फर की तरह सोचती चली जा रही थी कि उसकी दृष्टि बच्चे पर पड़ी। उसे उसके रोग और भूख की याद आने लगी। वह बोली, "इन विचार सरियों से इसका न तो रोग कटेगा और न भूख मिटेगी। वह अकस्मात उठी। दरवाजे में ताला लगाया और शहर की तरफ चल पड़ी। वह विचारों में फिर मग्न हुई चली जा रही थी।

"न ईश्वर है न धर्म, न भाग्य है न नियति का प्रबन्ध। जब ये सब कुछ नहीं है तो शुभ और अशुभ, उचित और अनुचित, पाप और पुण्य, नैतिकता और अनैतिकता ये भी नहीं। सदचरित्र और दुष्चरित्र केवल दृष्टिकोण के विषय है; सम्मति की बातें हैं। जीना जीवन का ध्येय है, निर्विघ्न निर्वाह उसकी पूर्ति।" उसे अजय की याद आ गई। "मैंने अजय को धोका दिया। उसी का फल मुझे भुगतना पड़ रहा है। मैंने बड़ा पाप किया है। हैं पाप—कैसा पाप ? पाप पुण्य तो कुछ है ही नहीं। मैं उसी के बताये हुए रास्ते पर चल रही हूँ। हाँ, निर्विघ्न निर्वाह; उसी के लिये मैं यत्नशील हूँ। मैं शादी करूँगी। मगर शादी अभी एक घण्टे में होने वाली नहीं है। तब क्या कोठे पर जाकर वेश्या का पेशा करूँ। उसके लिये भी तो समय चाहिये।" इन्दु ऊट-पटाँग विचारों में उलझी हुई थी। उसने सामने देखा। उसकी दृष्टि शहर के बड़े होटल पर पड़ी। उसने सोचा, "वहीं जाती हूँ। वहाँ बड़े-बड़े अमीर लोग जाते हैं। मैं रूपवती हूँ। कोठे पर क्यों जाऊँ। वहीं किसी एक-दो को फाँस लूँगी। एक बार का सौ माँगूँगी तो कोई इनकार न करेगा। और इसमें बुराई ही क्या है। अगर ध्यान से देखा जाये तो मैंने अब तक भी क्या किया। यही किया है जो अब करने की सोच रही हूँ। कहने को मैंने शादी की थी। परन्तु वहाँ क्या था। पहली शादी में भी मैं गोविंद के विलास की सामग्री थी। मैं उसकी कामाग्नि को शान्त करती थी और मुझे बदले में रोटी मिलती थी। दूसरी बार भुवन से भी यही बात थी। मैं उसके मन को रिझाया करती थी और वह मुझे रोटी कपड़ा देता था। और मैंने कहाँ क्या किया है ? केवल कहने को शादी थी। काम वही था जिसे बिना शादी किये समाज धिक्कारता है। मैंने जो पहले किया वही अब भी करूँगी। समाज की मिथ्या धारणाओं की मैं परवाह न करूँगी।" इन्दु गिर रही थी और गिरती ही चली गई। अब वह होटल के द्वार पर पहुँच गई। उसने डाइनिंग हाल में इधर-उधर नजर दौड़ाई। एक मेज के साथ एक नौजवान अकेला बैठा

था। उसके वस्त्रों से प्रतीत हो रहा था कि वह कोई अमीर व्यक्ति है। शराब की बोतल और प्याला उसके सामने पड़े थे। इन्दु सीधी उसी के सामने जा बैठी। बैठते ही उसकी तरफ मुस्कराई। वह व्यक्ति इधर-उधर देखने लगा। उसे उस नारी के साथ वहाँ कोई नजर न आया। इतने में मेज के नीचे से इन्दु ने अपने पैर से उसका पैर दबाया। उसने झट से टेबुल के नीचे को देखा। और देखते ही समझ गया कि मुर्गी अपनी ही है। ऐसा सुन्दर मुख, और उस पर ऐसी मुस्कान, ऐसी चितवन, ऐसी चपलता उसने कभी स्वप्न में भी न देखी थी। उसने प्याला आगे बढ़ा कर कहा, "नौश फरमाइयेगा।" इन्दु ने प्याला थाम लिया और एक चषक भी लिया। उसने अपने जीवन में प्रथम बार शराब को मुँह लगाया था। उसे बहुत कड़वा लगा। मगर वह चुपचाप जब्त करके बैठी रही। प्याला नीचे रखकर, मेज पर झुकते हुए मुँह उसकी तरफ बढ़ाकर, मुस्कराती हुई धीमे स्वर में बोली, "मैं सौ रुपया लेती हूँ। मंजूर हो तो बताओ ?"

वह व्यक्ति पहले मदान्ध था, फिर कामान्ध हो रहा था। पैसे की उसके पास कमी न थी। मन ही मन बोला, "जब दाता देता है तो छत फाड़कर। बिन माँगे मोती मिल गये।" प्रकट में बोला, "मंजूर है। तुम्हारा ठिकाना किधर है ?"

"यह प्रबन्ध तुम्हीं को करना होगा।"

"अच्छा, कोई परवाह नहीं। इसी होटल में अभी-अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।"

इन्दु ने चितवन कटाक्ष फेंकते हुए कहा, "ठीक है। परन्तु मैं आध घण्टे से अधिक न ठहर सकूँगी।"

वह व्यक्ति स्वयं अधीर हो रहा था। बोला, "मेरी जान, आध घण्टा तो बहुत है। दस मिनट भी तुम्हारे साथ कट जायें तो स्वर्ग समझूँगा।"

वे अभी इतनी ही बात कर पाये थे कि इन्दु की दृष्टि सामने की

तरफ पड़ी। उधर से अजय और सीताराम आ रहे थे। देखते ही इन्दु मिट्टी में गड़ गई। उसने अपनी आँखें मलीं, मगर यह स्वप्न न था। इन्दु ने तेजी से अपने सामने का प्याला उस व्यक्ति की ओर खिसका दिया। वह अपनी शक्ल उन्हें न दिखाना चाहती थी। वह छुपना चाहती थी। मगर कहाँ छुपती, वे इधर ही बढ़े आ रहे थे। लाचार वह काठ के टुकड़े की तरह, मुँह लटकाए उधर देखती रह गई।

ज्यों ही अजय की दृष्टि इन्दु पर पड़ी उसके मुख पर एक अद्भुत प्रसन्ता की लहर दौड़ गई। वह गोविंद को पहचानता था! उसे वहाँ न देखकर वह निसंकोच इसी टेबुल के साथ आकर बैठ गया और बैठते-बैठते बोला, "हेलो इन्दु, क्या हाल चाल है?"

इन्दु हतप्रभ हो रही थी। उसका दिल घबराया हुआ था। जैसे तैसे सारा साहस बटोर कर बोली, "ठीक हूं। बिल्कुल ठीक। आपके क्या हाल हैं।"

"मैं भी ठीक हूं। अभी-अभी विदेश से अपनी शिक्षा समाप्त करके आ रहा हूं।"

पास बैठा व्यक्ति मन ही मन गालियाँ निकालता रहा। "यह कबाब में हड्डी कहाँ से आ गई।" वह इन्दु की ओर से अपनी उपेक्षा देखकर बोला, "अच्छा फिर मैं चलूँ।"

"हाँ आप जाइये। अभी मैं आपके साथ न जा सकूँगी।"

उस व्यक्ति को ऐसे लगा कि स्वर्ग का द्वार खुलते ही वह सीधा नर्क में जा गिरा। वह मन ही मन कुढ़ता हुआ वहाँ से चला गया।

अजय ने पूछा, "यह कौन थे?"

इन्दु ने अपने जीवन में प्रथम बार अजय से झूठ बोला, "मेरे पति की पहचान के थे। चित्रकार हैं। अपने चित्रों को देखने के लिये बुला रहे थे।"

"चित्रों से तो मुझे भी बहुत अभिरुचि है। तब तो उनसे मेरा परिचय करवा दिया होता।"

अजय ने विषय को बदलते हुए कहा, "क्यों इन्दु आपके पतिदेव कहाँ है?"